बाबूजी कहते थे...

(गहन जीवन-बोध की कविताएँ)

बाबूजी कहते थे...

(गहन जीवन-बोध की कविताएँ)

शेखर 'अस्तित्व'

अद्विक पब्लिकेशन प्रा. लि.
Advik Publication Pvt. Ltd.

©सर्वाधिकार सुरक्षित
लेखक/प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीन, फ़ोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

बाबूजी कहते थे...
(गहन जीवन-बोध की कविताएँ)
ISBN: 978-93-93739-59-9
प्रथम संस्करण : 2022

प्रकाशक
अद्विक पब्लिकेशन
41 हसनपुर, आई. पी. एक्सटेंशन
पटपड़गंज, दिल्ली 110092
Tel: 011-43510732, 9560397075,
ई मेल : advikpublication1@gmail.com
Web :www.advikpublication.com

© स्वत्वाधिकार : **शेखर 'अस्तित्व'**
कवर डिज़ाइन :
प्रूफ़रीडिंग : व्योमा मिश्र
पुस्तक सज्जा : बिपिन राजभर
मूल्यः

मुद्रण: मल्टीप्रिंट, दिल्ली -110092

इस पुस्तक में लिखित सामग्री लेखक/लेखिका के निजी विचार हैं। इसके लिए प्रकाशक उत्तरदायी नहीं है।

समर्पण

स्व. मम्मी-बाबूजी की पुण्य स्मृति को

सादर समर्पित...

‘गहन जीवन बोध की कविताएँ...’

शेखर ‘अस्तित्व’ मूलतः गीत कवि हैं। उन्होंने महत्त्वपूर्ण ग़ज़लें भी लिखी हैं। वे आज हिंदी-फ़िल्म और टेलीविजन-जगत के सुपरिचित नाम हैं। वे अब तक 45 से भी अधिक मेगा-सीरियल्स के अलावा दर्जनों एल्बम्स और क़रीब आधा दर्जन फ़िल्मों में गीत-लेखन कर चुके हैं। फ़िल्म ‘संजू’ में इनका लिखा गीत ‘कर हर मैदान फ़तेह’ अत्यंत लोकप्रिय व चर्चित हुआ, साथ ही फ़िल्म-फ़ेयर अवॉर्ड के लिए भी नामित हुआ।

अब वे पिता को समर्पित कविताएँ लेकर आए हैं। हालाँकि विश्व साहित्य में ‘माँ’ को लेकर बहुत सारी कविताएँ, गीत, ग़ज़ल, कहानियाँ व उपन्यास लिखे गए हैं लेकिन पिता पर भी कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हुई हैं; लेकिन वे बहुत कम हैं। शेखर ‘अस्तित्व’ की इन कविताओं में पिता से सघन संवेदना में संवाद है। पिता एक रिश्ता ही नहीं एक सामाजिक संस्था भी होता है। पिता जीवन देता है, पालन-पोषण करता है, संस्कार देता है, साथ ही संतान का सामाजीकरण भी करता है। पिता की वर्जनाओं की सख़्ती में भी गहन अनुराग होता है। वह व्यवस्था, परिवार, समाज व दुनिया से जूझता हुआ अपनी संतान को स्नेह, सुरक्षा व संरक्षा प्रदान करता है।

हमारे शास्त्रों में किसी को तब तक ‘अनाथ’ के रूप में अभिहित नहीं किया जाता, जब तक उसका पिता जीवित रहता है। पिता चाहे जितना भी अशक्त हो लेकिन जब तक वह जीवित होता है, उसकी संतान ‘अनाथ’ नहीं कही जाती। इन अर्थों में उसकी उपस्थिति ही संतान को सनाथ करती है। भारतीय मनीषा में सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल को ‘प्रत्यक्ष देव’ कहा गया है। इसी क्रम में पिता को ‘भूदेव’ कहा गया है। शेखर ‘अस्तित्व’ की इन कविताओं में पिता के प्रति उनका गहन अनुराग साफ़ झलकता है। आज के सांस्कृतिक-विभ्रम के युग में पीढ़ियों के बीच आस्था व विश्वास का क्षरण बड़ी तेज़ी से हुआ है। नई पीढ़ी के लोग अपने बड़े-बुज़ुर्गों के प्रति जिस तरह की असहिष्णुता बरत रहे हैं उससे सामाजिक ढाँचे में बड़ा परिवर्तन हो रहा है; तमाम

वृद्धाश्रम इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। एक पिता अपने सभी बच्चों का पालन-पोषण कर लेता है, लेकिन सभी बच्चे मिलकर एक पिता का पालन नहीं कर पाते। नई पीढ़ी के जो लोग कुछ संवेदनशील भी होते हैं तो वे पिता के भोजन-वस्त्र की व्यवस्था कर अपने कर्तव्य की 'इतिश्री' समझ लेते हैं, जबकि बड़े-बुज़ुर्ग सेवा, सम्मान व ध्यान के हक़दार होते हैं। नई पीढ़ी के पास अपने बड़े-बुज़ुर्गों के लिए समय नहीं है।

आज के गलाकाट स्पर्धाधर्मी-युग में नई पीढ़ी जिस तनाव से गुज़र रही है, विकास की इस अंधी दौड़ में जिस क़दर मशगूल है, यदि वह ठहरकर सोचे तो उसे कहीं और जाने ही आवश्यकता ही नहीं है। उसे तमाम व्यवसायिक दक्षता बाँटनेवाले प्रतिष्ठानों व शांति-केंद्रों में भ्रमण करने की ज़रूरत नहीं, उनके ही घरों में अगाध जीवनानुभव व जीवन-संघर्षों का अनुभव लिए उनके पिता बैठे हैं, जिनसे उसे बात तक करने की फ़ुर्सत नहीं है। हालाँकि आज सोशल मीडिया, फ़ेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर, इंस्टाग्राम के चलते नई पीढ़ी को तो अपने बीवी, बच्चों, पड़ोसी, मित्रों, रिश्तेदारों तक से मिलने-जुलने, बात करने की फ़ुर्सत नहीं रह गई है। वे इस आभासी दुनिया के मोहपाश में इस क़दर उलझे हुए हैं कि वास्तविक दुनिया की हक़ीक़त तक से अपरिचित होते जा रहे हैं।

ऐसे समय में शेखर 'अस्तित्व' पिता की संवेदना को केंद्र में रखकर अपनी कविताएँ लेकर आए हैं। रचनाकार की अनुभूतियाँ निजी होती हैं लेकिन उसकी परिणति सार्वजनिक होती है, यही रचनाकर्म की महत्ता होती है। रचनाकार अपने निजी अनुभवों को रचकर मुक्त होता है एवं उसकी यही मुक्तिकामी चेष्टा प्रकारांतर से समाज की धरोहर हो जाती है। काव्य बाहरी दबाव से भी लिखा जाता है और आंतरिक प्रेरणा से भी। बाहरी दबाव 'प्रलोभन', 'भय', 'आग्रह', 'प्रशंसा' आदि रूपों में सामने आता है। इनसे ऊपर उठकर ही श्रेष्ठ काव्य लिखा जा सकता है। काव्य के लिए आंतरिक प्रेरणा ही सबसे उचित है। कबीर, तुलसी, सूर सभी ने आंतरिक प्रेरणा से ही रचना की थी। शेखर 'अस्तित्व' की ये कविताएँ उनकी आंतरिक प्रेरणा से प्रस्फुटित हुई हैं, अतः इनका विशेष महत्त्व है। ये कविताएँ शेखर 'अस्तित्व' की ओर से आज के सामाजिक विभ्रम में जी रहे उनके समय के लोगों के लिए एक प्रेरणा हैं। इन कविताओं में पिता के विविध रूपों से सघन संवाद तो है ही, साथ ही पिता से संबंधित तरल व सघन संवेदना का भाष्य भी है। ये कविताएँ पीढ़ियों के बीच जर्जर होते जा रहे आत्मीय रिश्तों, विश्वास व आस्था के बीच एक पुल बनाती हैं।

'बाबूजी कहते थे...' कविता में वे कहते हैं- 'बूँद से तू सागर हो जाएगा/ मन को मार, अमर हो जाएगा/ इच्छाएँ, सपने और मन/अंधी दौड़ ज़माने की/ जिस दिन हिम्मत आ जाए/ इन सबको ठुकराने की/ मील का तू पत्थर हो जाएगा...'

इस कविता को पढ़ते हुए अपने पुत्र को लिखा अब्राहम लिंकन का पत्र व पुत्री इंदिरा प्रियदर्शिनी को जेल से लिखे नेहरू के पत्र सहज रूप से याद आ जाते हैं। कितना गहन दर्शन है इन पंक्तियों में! बूँद से सागर बनने की विकास-यात्रा की प्रेरणा है, तो बूँद-बूँद से सागर बनने की संचय-प्रवृत्ति की सीख भी है। मन की चंचलता व उसकी बेकली ही व्यक्ति को उसके लक्ष्य से विरत करती है। इतिहास गवाह है, वे ही समय, समाज को बदलकर इतिहास रचने में सफल हुए हैं, जिनका अपनी इंद्रियों पर संयम रहा है, जिन्होंने अपने मन को वश में किया, वे ही अपने बहुमूल्य अवदानों से अमर हुए हैं। अमरता कोई आध्यात्मिक प्रत्यय हो न हो लेकिन अपने मन के संयम व संघर्षों के बल पर जिन्होंने दुनिया को सुंदर व सुरक्षित बनाने में अपना योगदान दिया है, आज यह समाज उन विभूतियों की अमरता को निर्विवाद रूप से स्वीकार करता है। इच्छाएँ, सपने और मन की अंधी दौड़ को ठुकराने का सत्साहस जब व्यक्ति में आ जाता है तब वह 'मील का पत्थर' हो जाता है। इच्छाएँ, सपने भी जीवन के लिए बेहद ज़रूरी होते हैं। इनके बिना जीवन का कोई उद्देश्य ही नहीं रह जाता, लेकिन शेखर ने इनके चलते किसी अंधी दौड़ में शामिल होने के निषेध पर बल दिया है क्योंकि इच्छाओं को पूरा करते जाने से इच्छाएँ ख़त्म नहीं होतीं; कीचड़ से कीचड़ नहीं धुलता। इच्छाएँ हों, सपने हों लेकिन उनके साथ ही विवेक भी हो और विवेक मन के संयम से ही सम्भव होता है। यह कविता जीवन-मूल्यों का दार्शनिक दृष्टिकोण से भाष्य करती है।

'हम हैं फक्कड़ कबीरा के यार' कविता में वे कहते हैं- 'हम हैं फक्कड़, कबीरा के यार / मगन मन-मस्ती में / नहीं दुनिया कुछ की दरकार / मगन मन-मस्ती में / ना काहू से बैर है अपना / ना काहू से प्रीत /डायन हार डरा ना पावे / लुभा सके ना जीत / हो किनारा या हो मझधार / मगन मस्ती में...'

यह शेखर 'अस्तित्व' के कबीर-मन की कविता है। आज के समय में कबीर की प्रासंगिकता बहुत बढ़ गई है, आज की यह यह स्वार्थलोलुप बाज़ार-संचालित, बाज़ारू होती जा रही दुनिया अंत में कबीर मन से ही बचेगी और कबीर-मन ही बचेगा इस दुनिया के अंत में। आज विचार, भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र, राष्ट्र के नाम पर जो विभेद पनपे हैं, उसका इलाज फक्कड़पन से ही सम्भव है, कबीर ने जिस तरह अपने-पराए

का भेद न करते हुए अपने खरे अंदाज़ में सबकी ख़बर ली है, यह कविता उसका पुनर्पाठ करती है। यह कविता कबीर के विषय में चिंतन-अनुचिंतन का प्रस्ताव रखती है। कबीर धार्मिक नहीं हैं, वे आध्यात्मिक हैं, उनकी धर्मेतर आध्यात्मिकता ही उनकी शक्ति है, उनके यहाँ धर्म के समूहबोध का सर्वथा अस्वीकार है क्योंकि आध्यात्मिकता, साधना का एकाकी पथ होता है, अतः वे धर्म के समूहबोध के चलते उपस्थित प्रतिकूलताओं को निरन्तर प्रश्नांकित करते हैं, हिन्दू-मुसलमान दोनों को उनके धार्मिक पाखंड, छल, छद्म के लिए फटकारते हैं। कबीर का जीवन-दर्शन अत्याधुनिक है, उसमें धर्मनिरपेक्षतावाद, लोकपरकवाद और गणतंत्रवाद का अद्भुत समन्वय है। शेखर 'अस्तित्व' इस कविता में कबीर के जीवन-दर्शन के प्रति आस्था प्रकट करते हुए आज के आधुनिक समाज के लिए कबीर के जीवन-दर्शन को समझने व उसे अंगीकृत करने का प्रस्ताव करते हैं।

'मौत की उँगली पकड़कर चल रहा हूँ...' कविता में वे कहते हैं- 'ज़िंदगी इक अनलिखी कविता-सी लगती / समझना तो दूर, पढ़ना भी कठिन है / अर्थ बतलाने की बातें व्यर्थ हैं सब / इसकी तो परिभाषा गढ़ना भी कठिन है / सोचता हूँ तो ये लगता है कि जैसे / साथ सबके स्वयं को भी छल रहा हूँ।'

जीवन-सत्ता की अबूझ पहेली का भाष्य करती इन पंक्तियों में गहन जीवन-दर्शन के स्वरों का अनुरणन है। आज तक ज़िंदगी की कोई सम्यक परिभाषा नहीं की जा सकी है। ज़िंदगी को साधने में प्रायः यह अंदेशा होने लगता है कि सामाजिक छद्म का अभिनय करने के क्रम में कहीं स्वयं के साथ भी तो छल नहीं किया जा रहा है! यह आत्मस्वीकृति की पराकाष्ठा है। शेखर 'अस्तित्व' की इन पंक्तियों में आत्मावलोकन व आत्ममूल्यांकन दोनों का सहमेल भी है व सहभाव भी है। अज्ञेय ने समकालीन रचना-प्रत्यय को कभी 'व्यक्तित्व की खोज' कहा था, अगर ये पंक्तियाँ साक्ष्य मानी जाएँ, तो लगता है कि शेखर 'अस्तित्व' व्यक्तित्व की खोज के अन्वेषी कवि हैं।

शेखर 'अस्तित्व' की आवाज़ को सुनना, इस मौन को, उन ख़ाली पर विन्यस्त जगहों को ध्यान में लेना भी है; जो वे पूरी सुघड़ता से छोड़ते-गढ़ते हैं। 'कविता' शेखर के जीवन का अध्यात्म है। यों तो सभी अपनी-अपनी नज़र से जीवन और कविता को देखते, समझते, रचते हैं। शेखर ने कविता की नज़र से जीवन देखा व रचा है, उनके यहाँ जीवन की, औरों की अपार शबीहें हैं। अपनी रचना में, बल्कि रचना-प्रक्रिया में दूसरों को शेखर ने जितना स्थान और जितनी आत्मीयता से दिया है,

वह दुर्लभ है। उनका अध्यात्म उन्हें दूसरों से काटता या आस-पास की दुनिया को छोड़कर अकेला नहीं करता। वे बीचों-बीच रहकर भी, औरों के साथ चलते हुए भी, अकेले लगते हैं। उनका यही अकेलापन ही उनके 'स्व' की खोज का पथ है।

'ख़ुद से मत हारना...' कविता की ये पंक्तियाँ उसी 'स्व' के आत्मबोध से उपजी अन्तःप्रज्ञा का उद्घोष करती हैं- 'मेरा दावा है ये- जीत जाएगा तू / ख़ुद से मत हारना / ख़ुद से मत हारना / सच तो ये है, कभी, देर नहीं होती / काम होंगे सभी, तयशुदा वक़्त पर / सब्र से काम ले, रब का तू नाम ले / ख़ुद ही आसान हो जाएगा हर सफ़र / पंख देगी हवा, तेरी रफ़्तार को / ख़ुद फ़रिश्ते भी तरसेंगे दीदार को..'

सबसे पहले व्यक्ति ख़ुद से हारता है और फिर धीरे-धीरे दुनिया के हर मोर्चे पर हारता चला जाता है, ख़ुद से जीतने का आशय अपनी कमज़ोरियों पर विजय पाने से है, अपनी कमज़ोरियों पर विजय पाए व्यक्ति या समाज के आत्मबल के समक्ष दुनिया की कोई भी सामरिक शक्ति या आपदा टिक नहीं पाती है, यह कविता व्यक्तित्व परिष्कार को ही सबसे बड़ी शक्ति के रूप में अभिहित करती है।

पूजा-पद्धति धर्म नहीं होती, अन्यथा रावण से पड़ा पुजारी कौन था? त्रिकाल-संध्या, अहर्निश शिव का दुग्धाभिषेक, रावण संहिता, शिवतांडव स्त्रोत की रचना, लेकिन युगों-युगों से प्रतिवर्ष उसका पुतला दहन किया जा रहा है। वह अधर्म का प्रतीक बना यह अभिशाप सदियों से झेल रहा है, पूजा व कर्म-कांड धर्म में अंतर्निहित जीवन-मूल्यों को किस तरह विरूपित व विखंडित करते हैं, उसके संदर्भ में 'हम सब अपने अहंकार की पूजा करते हैं..' की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- 'न साकार, न निराकार की पूजा करते हैं / हम सब अपने अहंकार की पूजा करते हैं / अलग- अलग है सबकी ढपली / अलग-अलग है राग / भाईचारे के भूसे में / सुलग रही है आग / लेना-देना क्या ईश्वर से / सबका नाता आडम्बर से / छद्म मुखौटे, इश्तिहार की पूजा करते हैं...'

यह कविता धार्मिक अनुष्ठानों के कर्मकांड के पीछे छिपे छल-छद्म की शिनाख़्त करती है व धर्मसंस्था के विरूपित होते जा रहे चेहरे के लिए इन्हीं कारकों को ज़िम्मेदार मानती है। यह समय जटिलता से मुँह चुराने का है, बौद्धिक सख़्ती से बचकर कुछ लोकप्रिय सामान्यीकरणों से अपने समय को समझने व रचने का है। यह बात याद रखने की है कि अस्तित्व और अनुभव की, प्रेम और वस्तुजगत की जटिलताओं से निबटने, उनसे दो-चार होने के जो सबसे भरोसेमंद तरीक़े हैं, कविता उनमें से एक है। शेखर की कविताएँ उसी भरोसे की कसौटी की कविताएँ हैं, जिनमें धर्म और समाज

सहित उन समस्त ज़िम्मेदार संस्थाओं की सघन पड़ताल है, जिनकी निरन्तर असफलताओं के चलते आज मनुष्यता लहूलुहान है व आम आदमी के जीवन-संघर्षों व दुर्निवार दुःखों में बेतहाशा इज़ाफ़ा हुआ है।

गाँव हमारी ऊर्जा के शक्तिपीठ हैं, वे हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, लेकिन व्यवस्था व सत्ता के कुप्रबंधन के चलते वे बदहाली का दंश झेलने को अभिशप्त हैं। गाँवों में अवस्थापना, सुविधाओं के अकाल के चलते, वहाँ से विस्थापन आज गाँवों की सबसे विकट समस्या है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं व महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के चलते वहाँ से निरन्तर विस्थापन हो रहे हैं व गाँव धीरे-धीरे खंडहर में तब्दील हो रहे हैं। गँवई राजनीति के दाँव-पेंच व संचार माध्यमों से वहाँ पसर रही नागर व अधकचरी कस्बाई सभ्यता के चलते गाँवों का मूल स्वरूप विरूपित हुआ है।

यह कविता गाँव की समकालीन दुर्दशा के प्रति गहरा अमर्ष व्यक्त करती है- 'जो पगडंडी पे चलते थे, मेरे वो पाँव लौटा दो / तुम्हारा शहर तुम रख लो, मेरा वो गाँव लौटा दो / मेरा वो गाँव जिसके गर्भ में नित प्यार पलता है / उछलते-कूदते पंछी के संग सूरज निकलता है / जहाँ पर एक ही मिट्टी है सारे गाँव की माता / जहाँ पर एक ही नाता है, भाईचारे का नाता...'

इस कविता में गाँव की मूल सांस्कृतिक चेतना के साथ ही प्रकृति की सुरम्य छवियों का मनोहारी काव्यांकन है, यह कविता पुनः गाँव की धूमिल हुई छवि की क्षतिपूर्ति करने व वहाँ की बदहाल व्यवस्था को दुरुस्त करने का प्रस्ताव करती है। कविता का मूल कार्य यही होता भी है। शेखर की यह कविता वस्तुतः अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह की कविता है। आधुनिक कवियों में मैथिलीशरण गुप्त और अज्ञेय भी इसका समर्थन करते मिलते हैं। गुप्त जी 'साकेत' के प्रथम सर्ग में कहते हैं- 'जो अपूर्ण, कला उसी की पूर्ति है'। अज्ञेय 'त्रिशंकु' में कहते हैं- 'कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का यत्न, अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह है'। यही एडलर की क्षतिपूर्ति का सिद्धांत भी है। शेखर 'अस्तित्व' की यह कविता गाँव की व्यवस्था-प्रबंधन की अपर्याप्तता को लेकर प्रश्नांकन भी है व विद्रोह भी है।

डायना लारेंशन व एलन स्विंजवुड ने 'द सोशियोलॉजी ऑफ़ लिटरेचर' में लिखा है कि 'लेखक/कवि का दृष्टिकोण स्वभावतः अधिक समीक्षात्मक होता है। समाज-संस्थाओं का संघात मात्र नहीं है, जिसमें एक ओर जहाँ व्यक्ति के अचार-विचार के आदर्शों एवं प्रतिमानों की व्यवस्था है, वहाँ दूसरी ओर ऐसे सुविचारित

मूल्यों का अंतर्भाव भी है, जिन्हें सामाजिक स्तर पर सिद्ध करने के लिए मनुष्य को यत्न करना होता है। शेखर 'अस्तित्व' की इन कविताओं को समाज के सुविचारित मूल्यों के अंतर्भाव को सिद्ध करने के यत्न के रूप में देखा जाना समीचीन होगा।

संग्रह में संकलित- 'राम सगा सौतेली दुनिया, मौत की उँगली पकड़कर चल रहा हूँ, मैं सनातन हूँ, उतने सफल कहाओगे तुम, रचे स्वर्ग संन्यासी, सिरफिरा हूँ, बेटे दुःख अपनाना सीखो', आदि कविताओं में मनुष्यता की मातृभाषा में जीवन की समीक्षा है। इन कविताओं के केंद्रीय स्वर में एक सुरक्षित व सुंदर दुनिया के संरक्षण, अनुरक्षण के प्रति गहरी चिंता का भाव है। जो लोग कविता से बहुत अधिक उम्मीद रखते हैं उन्हें कविता की सीमा को भी समझना चाहिए। कविता लोकरंजन करती है व मन बदलती है, हालाँकि यह बुनियादी रूप में बड़ा काम होता है। इतिहास गवाह है कि कविता ने मन बदलकर समय-समय पर टूटती हुई दुनिया को अपाहिज होने से बचाया है। एक लघु काव्य-नाटिका ने मन बदलकर एक बच्चे को गाँधी बनाया है, जिसके सत्यनिष्ठ अहिंसात्मक आंदोलन का लोहा आज दुनिया मानती है।

शेखर 'अस्तित्व' की ये कविताएँ वस्तुतः मन बदलनेवाली कविताएँ हैं, पिता के हवाले से वे अपने समय से संवाद करती हुई दो पीढ़ियों के बीच बढ़ रही दूरियों को पाटती हैं व अपने समय, समाज की समीक्षा करते हुए तमाम ज़रूरी प्रस्ताव करती हैं। ये ऐसी कविताएँ हैं जो देखती हैं, सारे ब्योरों में देखे को समझने की कोशिश करती हैं। इनकी यात्रा एक तरह के बोध उत्साह से सयाने-समझदार अवबोध तक की है। इस ऐंद्रियता को विन्यस्त करने और बचाए रखने के लिए शेखर 'अस्तित्व' ने किसी पारंपरिक अवलंब की ओर नहीं देखा है। उनकी कविता और उसकी ऐंद्रियता बिल्कुल नागरिक है। आज हिंदी नागरिक समाज किसी लोक-संस्पर्श से अछूता है और उसके पास अपने व्यापक सांस्कृतिक दायवंचन के चलते कोई पारम्परिक स्मृतियाँ शेष नहीं हैं। शेखर 'अस्तित्व' ने इस समूची विपन्नता से ही अपनी इन कविताओं को सम्भव किया है, अतः इन कविताओं का विशेष महत्त्व है। कविता के जो नए प्रतिमान तनाव और सूक्ष्मता के रूप में पिछले दो दशकों में विकसित हुए हैं, ये कविताएँ उनका अवमूल्यन नहीं करतीं बल्कि नई प्रतिष्ठा व सार्थकता देती हैं।

शेखर 'अस्तित्व' असीमित मानवीय प्रतिबद्धता के कृतिकार हैं। वे मनुष्य के विरुद्ध हो रहे विराट षड्यंत्र के शिकार के रूप में ही नहीं लिखते बल्कि वे उस षड्यंत्र में अपनी हिस्सेदारी की भी खोज करते हैं और उसे बेझिझक ज़ाहिर करते हैं। इसीलिए

उनकी कविताएँ निरा तटस्थ बखान नहीं बल्कि निजी प्रमाणिकता और इंवॉलमेंट की कविताएँ हैं। भयंकर तनावों और अमानवीकरण की शक्तियों से यह समझभरी संवेदना कविता में ज़बर्दस्त मुठभेड़ करती हैं, जय-पराजय की शब्दावली में सोचना इन कविताओं की बुनियादी शर्तों के लिए अप्रासंगिक-सा होगा। ये कविताएँ सर्वग्रासी शक्तियों के बरक्स अपनी बुनियादी मानवीयता बनाए रखने का आश्वासन देती हैं। यह संग्रह पिता की संवेदना में रची गई उज्ज्वल अनुभूतियों का दस्तावेज़ भी है व उम्मीद की किताब भी है।

इस संग्रह की कविताएँ हमें प्रेरित करती हैं, खोजती हैं, घेरती हैं व उठ खड़ा होने का हौसला देती हैं, आशा है यह काव्य-संग्रह सुधी पाठकों में पर्याप्त समादर प्राप्त करेगा व हिंदी में कविता की सम्भावना को आगे बढ़ाने में सफल होगा।

शुभकामनाओं सहित

श्रीधर मिश्र

गोरखपुर

9450829617

7703022040

‘अस्तित्व’ के गीतों से गुज़रते हुए...

भाई शेखर ‘अस्तित्व’ के गीतों से गुज़र रहा हूँ और लगातार गीत-ऋषि वीरेन्द्र मिश्र की याद आ रही है। अपने एक गीत में वह कहते हैं-

गीत वो है, पढ़ो, झूम लो,
सिर्फ़ मुखड़ा पढ़ो, चूम लो।

वाक़ई, शेखर मुखड़ों के मास्टर हैं। वह अपने गीत के मुखड़े से ही भावुक मन को बाँध लेते हैं। गीत की आत्मा के तार से जुड़ते हैं, उनके गीतों के मुखड़े और गीत की पूर्णाहुति तक उसकी टेर और गूँज बनी रहती है, बल्कि गीत समाप्त हो जाने के बाद भी जैसे मन ही में कहीं चलते रहते हैं। मुखड़े की केंद्रीयता का वह अंत तक अद्भुत और अप्रतिम निर्वाह करते हैं। एक पुष्ट गीत का संकेत उसका मुखड़ा ही कर देता है। जब गीत अपनी मंज़िल तक पहुँचता है तो मन गंगा नहाया-सा हो जाता है, एक सपना जैसे साकार हो उठता है। सांगोपांग रूप में गीत का सौष्ठव अभिभूत कर देता है। ऐसे ही एक गीत का यह अंश देखें -

जान गए हम, बूझ गए हम,
उलझी एक पहेली दुनिया।
राम सगा, सौतेली दुनिया।
कौन हैं अपने, कौन पराए,
सब नाते, स्वारथ के जाए,
दुःख में राम नाम काम आए,
सुख की सिर्फ़ सहेली दुनिया।
राम सगा, सौतेली दुनिया।

यह अकारण नहीं है कि शेखर की चेतना में कबीर साँस लेते हैं। उनकी बोली-बानी, भाषा-कहन, सब कबीर जैसा ही है। उनका शिल्प शीशे जैसा है।

'हमन है इश्क मस्ताना' की गूँज-अनुगूँज उनमें है, तभी तो वह कहते हैं -

हम हैं फक्कड़, कबीरा के यार,
मगन मन-मस्ती में।
नहीं दुनिया की कुछ दरकार,
मगन मन-मस्ती में।

शेखर अपने पूर्वजों को बहुत मन से याद करते हैं। उनके लिए माँ-पिता केवल एक रिश्ताभर नहीं हैं बल्कि एक मूल्य हैं। उनका अतीत अव्यय अतीत है। कथाकार कमलेश्वर के शब्दों में कहें तो कुछ-कुछ 'आगामी अतीत' जैसा। पिता उनकी रचनात्मकता में समाए हुए हैं, शिराओं में रक्त की तरह प्रवाहित हैं। उन्हें पिता को याद करते देख मुझे अपने पिता गीतकार-कवि उमाकांत मालवीय की याद आती है। पिता का सुमिरन मुझे भी बहुत बल देता है। गीत-संग्रह का नाम, 'बाबूजी कहते थे...' जब शेखर दे रहे होंगे तो सचमुच वह कितने पवित्र पूजा-प्रार्थना के क्षण रहे होंगे। उनकी रचनाशीलता प्रत्यंचा पर चढ़े तीर जैसी है। वह जितना पीछे जाते हैं, उतना ही आगे देख पाते हैं। अतीत वर्तमान और भविष्य को वह किसी साधक की तरह साधते हैं। उनके पास गीत की ऐसी गुनगुनाहट है, जो उनसे ऐसे तरल और पारदर्शी गीत लिखवाती है -

बूँद से तू सागर हो जाएगा।
मन को मार, अमर हो जाएगा।
इच्छाएँ, सपने और मन,
अंधी दौड़ ज़माने की।
जिस दिन हिम्मत आ जाए,
इन सबको ठुकराने की।
ये जग तेरा घर हो जाएगा।

मायानगरी की माया ने उन्हें छुआ नहीं है। भरत व्यास, नरेंद्र शर्मा, नीरज, इंदीवर, मजरूह और साहिर की उजली परम्परा को वह फ़िल्म-नगरी में जी रहे हैं।

अपने स्तर पर वह सिनेमा और साहित्य के बीच एक पुल-सा बना रहे हैं। फ़िल्म के नाम पर जो, कथित साहित्यिक लोग, नाक-भौं सिकोड़ते हैं, मुझे लगता है वह एक तरह की कुंठा के शिकार बीमार लोग हैं अन्यथा इस माध्यम को भी गुलज़ार, निदा फ़ाज़ली और जावेद अख़्तर जैसे रचनाधर्मियों ने अपनी अभिव्यक्ति का ज़रिया बनाया है। व्यावसायिकता साहित्यिकता के रास्ते में कभी रोड़ा नहीं बनती, बशर्ते आपके पास एक सार्थक सर्जनात्मक अंतर्दृष्टि हो।

शेखर 'अपनी बात' में भी सबकी बात कहते हैं। वह आपबीती को जगबीती बना देने वाले रचनाकार हैं। शेर याद आता है-

कहानी मेरी रूदाद-ए-जहाँ मालूम होती है
जो सुनता है उसी की दास्तां मालूम होती है।

अपनी इसी अन्यतम विषेशता के कारण उनके भीतर का कवि चकाचौंध या भीड़भाड़ में कहीं खोया नहीं और अपनी एक मौलिक भंगिमा के साथ सिनेमा और साहित्य के परिदृश्य पर झिलमिलाता-जगमगाता रहा और ऐसे अलबेले क़िस्म के गीत रचता रहा -

अहंकार के उच्च शिखर से,
नीचे स्वयं उतर के आना।
मुझसे मिलने का मन हो तो,
ख़ुद को ख़ाली करके आना।

शेखर के गीत-संग्रह के प्रकाशन को मैं एक परिघटना के रूप में देख रहा हूँ क्योंकि यह गीत मंचों से जितना सुने जाते हैं, काग़ज़ पर भी उतने ही मज़बूत और असरदार-धारदार ठहरते हैं। निश्चित ही इनकी पुकार दूर तक और देर तक सुनाई देनेवाली है। पूरा विश्वास और भरोसा है कि इन गीतों से हिन्दी गीतों का आसमान कुछ और भासमान, कुछ और विस्तृत होगा।

आमीन! आमीन!! आमीन!!!

-यश मालवीय

प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

अपनी बात

सर्वप्रथम तो उन हाथों को प्रणाम, जिन्होंने इस समय इस कृति को थाम रखा है। उस दृष्टि को प्रणाम, जो इस वक़्त इन शब्दों पर पड़ रही है। उस हृदय को प्रणाम, जो इन क्षणों में मेरे टूटे-फूटे शब्दों के माध्यम से ही सही, लेकिन मेरी भावनाओं के धरातल पर मुझसे जुड़ा हुआ है। उस आत्मा को प्रणाम, जो भौतिक जगत की तमाम जटिलताओं और विषमताओं के बीच रहकर भी मेरे हृदय से निकली इस सरल और सहज अभिव्यक्ति को उसी तरह आत्मीयता से ग्रहण कर रही है, जैसे हंस नीर में मिले हुए क्षीर को ग्रहण करता है।

मेरे मित्र! यूँ तो मैंने ऊपर शीर्षक में इन बातों को 'अपनी बात...' कह दिया है, लेकिन सच कहूँ तो इसमें मेरी अपनी कोई बात नहीं है। इसमें जो कुछ भी है, वो सब मेरे स्वर्गीय 'बाबूजी' का दिया हुआ ही है। मैंने जन्म से लेकर जब तक उनका भौतिक सान्निध्य पाया, उस कालखंड में उनसे जाने-अनजाने जो कुछ भी सीखा, बस वही है। उनके द्वारा दी हुई शिक्षा, उनके द्वारा कही गई बातें, उनके द्वारा दिए गए संस्कार, समय-समय पर उनके द्वारा मिली हुई नसीहतें, यही सब हैं; मेरा अपना कुछ नहीं है। सच कहूँ तो मेरे जीवन में स्वयं के द्वारा अर्जित किया हुआ कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी है, वो सिर्फ़ और सिर्फ़ मेरे स्वर्गीय माता-पिता और पूर्वजों की देन ही है। पता नहीं, कितना सँजो पाया, कितना सँभाल पाया, लेकिन सच यही है कि इस कृति में उनके भावों को ही मैंने शब्द देने का प्रयास किया है। रस, छंद, अलंकार, भाषा, व्याकरण... मुझे कुछ नहीं पता। बस इतना पता है कि जो कुछ बाबूजी से मिला, उसे अपने टूटे-फूटे शब्दों में, सीधी-सादी, आधी-अधूरी तुकबंदी करके आपके सामने रख दिया है, बस...।

इससे पहले कि आपको अपने साथ आगे ले चलूँ, यह बताना आवश्यक है कि मेरे बाबूजी कौन थे, कैसे थे, उनकी सोच क्या थी, उनके विचार क्या थे, उनके

जीवन पर किन-किन बातों का कैसा प्रभाव पड़ा। मेरे बाबूजी स्वर्गीय वामनराव गजभिए का जन्म 20 जनवरी 1940 को वर्तमान गोंदिया ज़िले के हुटकाटोला नामक एक छोटे से गाँव में, एक मध्यमवर्गीय, किंतु सुखी परिवार में हुआ था। 'सुखी' मैंने इसीलिए कहा क्योंकि मेरे परदादा स्वर्गीय लक्ष्मणराव जी, जिन्हें सब 'लक्षी महाराज' कहा करते थे, और मेरे दादा विट्ठलराव, जिन्हें सब 'विठोबा जी महाराज' के नाम से जानते थे, वे अनेक पीढ़ियों से केवल भजन - पूजन, कथा-कीर्तन और कर्मकांड के द्वारा ही अपने परिवार का भरण-पोषण करते आए थे। इसी क्रम में मेरे परदादा श्री लक्ष्मणराव जी जब भजन-कीर्तन करते हुए हुटकाटोला में आए। तब हुटकाटोला के ज़मींदार, जीवन पटेल, ने उनके कथा-कीर्तन से प्रभावित होकर 12 एकड़ खेत उन्हें दक्षिणा के रूप में दे दिए जिससे उनके परिवार का निर्वहन आराम से हो सके और उनका भजन-पूजन निर्बाध रूप से चलता रहे और उनसे प्रार्थना की कि वे कृपया इसी गाँव में बस जाएँ। बस, तभी से हुटकाटोला हमारा पैतृक-गाँव हो गया।

इसी गाँव में, मेरे दादा श्री विठोबा जी महाराज का जन्म हुआ। कालांतर में उनके विवाह के पश्चात उनके छः पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र के रूप में मेरे बाबूजी का जन्म हुआ। चूँकि परिवार में पिछली अनेक पीढ़ियों से भगवान सत्यनारायण की कथा-कीर्तन, भजन-पूजन, कर्मकांड, राशि-भविष्य और ज्योतिष की परंपरा चली आई थी, सो तत्कालीन ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर मेरे बाबूजी का नाम भगवान विष्णु के वामन अवतार पर 'वामनराव' रखा गया। बाबूजी बचपन से ही सुंदर, स्वस्थ, कुशाग्र बुद्धि तो थे ही, हनुमानजी के पक्के भक्त भी थे। पिता और दादा के द्वारा पारंपरिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता आया ज्योतिष का ज्ञान उन्होंने सहज ही आत्मसात कर लिया। दादा जी की अनुपस्थिति में, उनसे मिलने के लिए आनेवाले लोगों को बाबूजी ही समस्या का समाधान बताते और उनके संकट का निवारण करते। बाबूजी के द्वारा की गई भविष्यवाणी एकदम सटीक होती।

इस तरह किशोरावस्था से, अथवा छात्र-जीवन से ही, बाबूजी की ख्याति आस-पास के गाँवों में फैलने लगी थी और वे सामाजिक सरोकारों में ज़्यादा रमने लगे थे। यह मेरे पूर्वजों के पुण्य-प्रताप का ही फल है कि आज भी जब कभी मैं अपने पैतृक-गाँव जाता हूँ तो वहाँ के अनेक लोग मुझे उस परिवार का, उस परंपरा का उत्तराधिकारी समझकर अपनी निजी समस्या बताते हैं और उसका समाधान पूछते हैं। हालाँकि यह

सूर्य के तेज की तरह सत्य है कि मैं अपने पुरखों के पाँव की धूल भी नहीं हूँ। मेरे जैसा सांसारिक प्रपंचों में आकंठ डूबा हुआ व्यक्ति यह दावा कर भी कैसे सकता है? ख़ैर...

इसी बीच बाबूजी ने स्नातक की पढ़ाई पूर्ण की और उसके उपरांत उनका विवाह हो गया। मेरे नाना स्वर्गीय बुधरामजी चौरीडुले गोंदिया के एक सफल और संपन्न व्यवसायी थे। उनका बीड़ी का कारोबार था, जो उस समय भारत के अनेक राज्यों तक फैला हुआ था। उनके कारख़ाने की बनी 'नाग छाप बीड़ी' उस समय उड़ीसा और बंगाल तक जाती थी। मेरे नानाजी ने अपने दोनों बच्चों, यानी मेरी मम्मी इंदुमती और मेरे मामा प्रेमानंद, को बहुत अच्छी शिक्षा दिलाई। मेरे मामाजी पीएच.डी. करके प्रोफ़ेसर हो गए और मम्मी ग्रेजुएशन करके स्कूल में शिक्षिका बन गईं।

विवाह के बाद मम्मी की पोस्टिंग बालाघाट में हो गई। उन्होंने आजीवन बालाघाट ज़िले के विभिन्न स्कूलों में अध्यापन-कार्य किया। इस तरह हम बालाघाट के निवासी हो गए और हमारी शिक्षा-दीक्षा सब बालाघाट में ही संपन्न हुई। बाबूजी विवाह के बाद कुछ वर्षों तक भिलाई स्टील प्लांट में कार्यरत रहे, लेकिन उनका मन नौकरी में नहीं लगा और वे नौकरी छोड़कर फिर से समाजसेवा में तल्लीन हो गए और आजीवन निःस्वार्थ भाव से जनसेवा के कार्यों में ही व्यस्त रहे।

घर में बाबूजी से मिलने के लिए आनेवालों का ताँता लगा रहता था। वे उनकी समस्याओं को सुनते और अपने स्तर पर उनका समाधान करते थे। आगंतुकों के जलपान की व्यवस्था करना मेरी ज़िम्मेदारी हुआ करती थी। इसके अलावा मेरा दूसरा काम था, बाबूजी को किताबें पढ़कर सुनाना। बाबूजी अक्सर कुर्सी पर आँखें बंदकर बैठे रहते और मैं उन्हें विभिन्न विषयों की किताबें पढ़कर सुनाया करता। बीच-बीच में वे मुझे रुकने के लिए कहते और मेरे द्वारा पढ़ी गई पंक्तियों का भावार्थ समझाते। घर में धार्मिक, सामाजिक, विज्ञान, ज्योतिष, हस्तरेखा आदि विषयों की अनेक दुर्लभ किताबें थीं। गीताप्रेस गोरखपुर की अनेक किताबें तो थीं ही, इसके अलावा 'कल्याण' और 'धर्मयुग' भी नियमित रूप से हर महीने आती थी। स्वामी विवेकानंद से लेकर ओशो तक, और पंडित नारायण दत्त श्रीमाली से लेकर काउंट लुइस हेमन 'कीरो' तक को मैंने बाबूजी के सानिध्य में ही पढ़ा। बुद्ध का दर्शन हो या हिटलर की आत्मकथा, बच्चन की 'मधुशाला' हो या खलील जिब्रान की 'पैगंबर', बाबूजी मुझे

सब पढ़ने के लिए कहते और पंक्तियों में छिपे गूढ़ार्थ सरल रूप में, बोलचाल की भाषा में मुझे समझाते। इस तरह किताबों और पठन-पाठन के प्रति मेरा प्रेम बाबूजी के कारण ही उपजा और कालांतर में क्रमशः बढ़ता ही गया।

बाबूजी जितने अच्छे विचारक थे, उतने ही प्रखर वक्ता भी थे। उनके सुकोमल हृदय में जब कभी भावनाओं का ज्वार उठता था, तब वो कुछ पंक्तियाँ गढ़ लिया करते थे और मुझे गोद में उठाकर उन पंक्तियों को गुनगुनाया करते थे। इस तरह मेरे भीतर लेखन का जो अंकुर फूटा उसके पीछे का एकमात्र कारण मेरे स्वर्गीय बाबूजी ही थे। बचपन में जब भी मैं कुछ कच्ची-पक्की रचनाएँ लिखकर उन्हें सुनाता था तो वो बड़े ही ध्यानपूर्वक उन रचनाओं को सुनते और अपने मित्रों के सामने मुझे उस कविता का पाठ करने को कहते थे। मेरी टूटी-फूटी तुकबंदियों पर भी मेरा उत्साहवर्धन किया करते थे बाबूजी के इसी उत्साहवर्धन के फलस्वरूप मैं लेखन की दिशा में बढ़ता गया। और आज जो कुछ भी हूँ, जहाँ तक भी इस लेखन-यात्रा में पहुँच पाया हूँ, उसके पीछे सिर्फ़ और सिर्फ़ बाबूजी का संबल और आशीर्वाद ही है। चाहे कोई मुझे कुछ भी कहे, कुछ भी समझे, लेकिन मैं अब भी केवल यही मानता हूँ कि लेखन के नाम पर मैंने सिर्फ़ काग़ज़ काले किए हैं... बस।

अंत में अपनी बात को विराम देते हुए... बाबूजी को समर्पित इस ग़ज़ल के साथ, आपको इस कृति की सहयात्रा में हृदय से आमंत्रित करता हूँ...

कविता, ग़ज़लें, गीत, रुबाई, बाबूजी की देन है जी!
मेरा फक्कड़पन, सच्चाई, बाबूजी की देन है जी!
मेरे शब्दों का उथलापन, बेशक़! मेरा अपना है!
लेकिन भावों की गहराई, बाबूजी की देन है जी!
दसवीं तक बस दस प्रतिशत ही विद्यालय में पढ़ पाया!
नब्बे प्रतिशत मेरी पढ़ाई, बाबूजी की देन है जी!
बुरी आदतें जितनी भी हैं, वो सब मैंने बोई हैं!
जो कुछ मुझमें है अच्छाई, बाबूजी की देन है जी!
कृपा भले ही ईश्वर की हो, ज़रिया चाहे जो भी हो!

पर जो कुछ है मेरी कमाई, बाबूजी की देन है जी!
समझौतों की लाश जलाकर बचपन में ही फूँक चुका!
सिद्धांतों की ये परछाई, बाबूजी की देन है जी!
है मेरा 'अस्तित्व' उन्हीं से, धूल हूँ उनके चरणों की!
मानवता की सीख जो पाई, बाबूजी की देन है जी!

शेखर 'अस्तित्व'
मुम्बई,14-06-2022

अनुक्रमणिका

1.	बाबूजी कहते थे...	29
2.	हम हैं फक्कड़ कबीरा के यार...	30
3.	ख़ुद को ख़ाली करके आना...	31
4.	राम सगा, सौतेली दुनिया...	32
5.	मौत की उँगली पकड़कर चल रहा हूँ...	33
6.	ख़ुद से मत हारना...	34
7.	हम सब अपने अहंकार की पूजा करते हैं...	35
8.	मैं सनातन हूँ...	36
9.	उतने सफल कहाओगे तुम...	37
10.	रचे स्वर्ग संन्यासी...	38
11.	सिरफिरा हूँ...	39
12.	बेटे, दुःख अपनाना सीखो...	40
13.	वो साथ चलें...	43
14.	साँचा तेरा एक नाम...	45
15.	मेरा दुःख कम हो जाता है...	46
16.	मेरा वो गाँव लौटा दो...	47
17.	चलो, मृत्यु को गले लगाएँ...	51
18.	गुनगुना ऐ मन मेरे...	50
19.	सबको मरघट में जाना है...	53
20.	तोते रटते रह जाते हैं...	54
21.	आशाओं का अंत नहीं है...	55
22.	कपड़े क्यों रँगाया...	56

23.	भए हम परदेसी...	57
24.	ऐ दिल, ऐ यार मेरे...	58
25.	चल रे मन बंजारे...	59
26.	तुमको मुबारक हो...	60
27.	ज़िंदगी जीने की ज़िद करती रही...	61
28.	गीत मेरे लफ़्ज़ों के पंछी दीवाने...	62
29.	अच्छे हैं मदहोशी के पल...	63
30.	रात ढल रही है...	65
31.	जैसे-तैसे दिन बुनता हूँ...	66
32.	बड़ा है आत्मबल...	67
33.	छोड़ सब तू, राह ख़ुद अपनी बना...	68
34.	माँ भारती के लिए...	69
35.	मनवा रे मनवा...	70
36.	हम तो हैं सदियों से एक...	71
37.	हे कवि! बलिदान दो तुम...	73
38.	मैं पुजारी गीत का...	75
39.	फिर तुम्हें आना ही होगा...	77
40.	युद्ध और प्रेम...	81
41.	अहा! मृत्यु!!	83
42.	मृत्यु कहते सब जिसे...	85
43.	इक मुखौटा तुम लगाते हो...	92
44.	साँझ ढले ही ध्यान हमारा...	93
45.	मुस्कुराने को न बोलो...	94
46.	ख़ुद से बातें कर लेता हूँ...	95
47.	अनगाए गीत मेरे...	96
48.	क्या पाया! मरुथल-सा जीवन!	98

49.	याद आए बचपन के गाँव रे...	99
50.	मौन की भाषा...	100
51.	आत्मशक्ति का खेल है सारा...	103
52.	एक तरफ़ होना पड़ेगा...	105
53.	धरती मैया माफ़ कर देना हमें...	106
54.	राम नाम सत्य है...	107
55.	तुझे सच्ची दुःख तो होता होगा न?	108
56.	अटल जी को याद करते हुए...	110
57.	कुछ दोहे...	112
58.	हर्ज क्या है...	113
59.	ओ नादान जमूरे...	114
60.	राम नाम के जैसा पावन...	116
61.	मैं अच्छा इंसान नहीं हूँ...	118
62.	तुम मुझको विस्मृत कर देना...	119

बाबूजी कहते थे...

बूँद से तू सागर हो जाएगा!
मन को मार, अमर हो जाएगा!

इच्छाएँ, सपने और मन,
अन्धी दौड़ ज़माने की!
जिस दिन हिम्मत आ जाए,
इन सबको ठुकराने की!
मील का तू पत्थर हो जाएगा।
मन को मार...
धरती बिछा, आसमां ओढ़,
चख ले फ़ाका-मस्ती को!
ख़ुद से बाहर निकल ज़रा,
मिटा दे अपनी हस्ती को!
ये जग तेरा घर हो जाएगा।
मन को मार...
परछाई के पीछे तू,
कितना, कब तक भागेगा?
शाम हो चली जीवन की,
आख़िर कब तू जागेगा?
जब ये तन जर्जर हो जाएगा?
मन को मार...
झूठी दुनियादारी है,
झूठे रिश्ते-नाते हैं,
तेरा-मेरा, सब दिल को,
बहलाने की बातें हैं,
सबका जोड़ 'सिफ़र' हो जाएगा।
मन को मार...

***

हम हैं फक्कड़ कबीरा के यार...

हम हैं फक्कड़, कबीरा के यार,
मगन मन-मस्ती में।
नहीं दुनिया की कुछ दरकार,
मगन मन-मस्ती में।

ना काहू से बैर है अपना,
ना काहू से प्रीत।
'डायन हार' डरा ना पावे,
लुभा सके ना जीत।
हो किनारा, या हो मझधार,
मगन मन-मस्ती में।
नहीं दुनिया की...

आठ पहर महाठगिनी माया,
आकर चरण पखारे।
मन-बैरागी अपनी धुन में,
राम-ही-राम उचारे।
लगे निर्जन-सा बीच-बज़ार,
मगन मन-मस्ती में।
नहीं दुनिया की...

***

ख़ुद को ख़ाली करके आना...

अहंकार के उच्च शिखर से,
नीचे स्वयं उतर के आना।
मुझसे मिलने का मन हो तो,
ख़ुद को ख़ाली करके आना।

अभी तुम्हारे मन के भीतर,
भाव-सिंधु में ज्वार उठा है।
अभी तृप्ति है सिर्फ़ दिखावा,
तृष्णा का अंबार उठा है।

सुनो! जल्दबाज़ी मत करना,
थोड़ा और ठहर के आना।
मुझसे मिलने का मन हो तो,
ख़ुद को ख़ाली करके आना।

मैं जबसे जन्मा तबसे ही,
ढाई आखर बाँच रहा हूँ।
किसी आदिवासी बच्चे सा,
धूल उड़ाते, नाच रहा हूँ।

तुम अपने सब ग्रंथ-पोथियाँ,
वहीं, ताक पर धर के आना।
मुझसे मिलने का मन हो तो,
ख़ुद को ख़ाली करके आना।

***

राम सगा, सौतेली दुनिया...

जान गए हम, बूझ गए हम,
उलझी एक पहेली दुनिया।
राम सगा, सौतेली दुनिया।

निस दिन देखे, और ललचावै,
लाख जतन करे, छूट न पावै।
मन माखी, लिपटे मर जावै,
मीठी गुड़ की भेली दुनिया।
राम सगा, सौतेली दुनिया।

कौन हैं अपने, कौन पराए,
सब नाते, स्वारथ के जाए।
दुःख में राम-नाम काम आए,
सुख की सिर्फ़ सहेली दुनिया।
राम सगा, सौतेली दुनिया।

पल-दो-पल का है ये मेला,
साथ न जाए कौड़ी-धेला।
सोच तू इसके संग है खेला,
या तेरे संग खेली दुनिया।
राम सगा, सौतेली दुनिया।

***

मौत की उँगली पकड़कर चल रहा हूँ...

पग धरे जिस दिन धरा की देहरी पर
तब तनिक आभास ना था, मैं कहाँ हूँ।
किंतु अब विश्वास पक्का हो चला है
मौत की उँगली पकड़कर चल रहा हूँ।

ज़िंदगी इक अनलिखी कविता-सी लगती
समझना तो दूर, पढ़ना भी कठिन है।
अर्थ बतलाने की बातें, व्यर्थ हैं सब
इसकी तो परिभाषा गढ़ना भी कठिन है।

सोचता हूँ तो ये लगता है कि जैसे
साथ सबके स्वयं को भी छल रहा हूँ।

हाँ, ये पल! जिनमें ये साँसें जागती हैं
लम्हा-लम्हा ये सभी अब सो रहे हैं
किस विधि से हल निकालें इस गणित का
सारे उत्तर, प्रश्नवाचक हो रहे हैं।

चाह तो है लक्ष्य की, लेकिन करूँ क्या,
रास्तों की ही नज़र में खल रहा हूँ।

***

ख़ुद से मत हारना...

मेरा दावा है ये- जीत जाएगा तू,
ख़ुद से मत हारना।
ख़ुद से मत हारना।

सच तो ये है, कभी देर होती नहीं
काम होंगे सभी, तयशुदा वक़्त पर
सब्र से काम ले, रब का तू नाम ले
ख़ुद ही आसान हो जाएगा हर सफ़र
पंख देगी हवा तेरी रफ़्तार को
ख़ुद फ़रिश्ते भी तरसेंगे दीदार को
मंज़िलें, रास्तों को दिखाएगा तू
ख़ुद से मत हारना।
ख़ुद से मत हारना।

तेरे जैसा यहाँ, और कोई नहीं
फिर किसी और से, होड़ किस बात की?
जीत का अर्थ क्या है, समझ ले ज़रा
ख़ुद समझ जाएगा, दौड़ किस बात की?
अपने हर पल को, पहले से बेहतर बना
हो सके तो, हर इक दिल में तू घर बना।
बनके सूरज, नई भोर लाएगा तू
ख़ुद से मत हारना।
ख़ुद से मत हारना।

***

हम सब अपने अहंकार की पूजा करते हैं...

न साकार, न निराकार की पूजा करते हैं,
हम सब अपने अहंकार की पूजा करते हैं।

निकल सकें हम ख़ुद से बाहर,
इतना समय कहाँ!
पर-पीड़ा को अपना समझें,
ऐसे हृदय कहाँ!
कहने को तो भीड़ बड़ी है,
पर सबको अपनी ही पड़ी है।
देह भुलाकर, अलंकार की पूजा करते हैं,
हम सब अपने...

अलग-अलग है सबकी ढपली,
अलग-अलग है राग।
भाईचारे के भूसे में,
सुलग रही है आग।
लेना-देना क्या ईश्वर से!
सबका नाता आडंबर से।
छद्म मुखौटे, इश्तिहार की पूजा करते हैं,
हम सब अपने...

***

मैं सनातन हूँ...

मेरा ठोस-रूप हिम-कण है,
मेरा तरल-रूप है पानी
मेरा वाष्प-रूप बादल है,
शाश्वत है मेरी कहानी।
मैं सनातन हूँ।

मैं बीज हूँ, मैं ही फल हूँ,
मैं पर्ण, पुष्प, तरुवर हूँ।
सृष्टि ने जिसे नित गाया,
अनहद रूपी वह स्वर हूँ।
संघर्ष, विजयपथ मेरा,
अविरल है मेरी रवानी।
हर जीत हुई नतमस्तक,
जब हार न मैंने मानी।
मैं सनातन हूँ।

जिसे शस्त्र छेद ना पाए,
जिसे अग्नि जला ना पाए।
जिसे वायु सुखा सके ना,
जिसे जल भी गला ना पाए।
अनुवाद पंच-तत्वों का,
भौतिक तन, क्षुद्र निशानी।
सौ में से घटे सौ फिर भी,
सौ बचे, बात यह जानी।
मैं सनातन हूँ।

***

उतने सफल कहाओगे तुम...

बीच सड़क डुगडुगी बजाओ
बंदर तभी नचा पाओगे।
उतने सफल कहाओगे तुम,
जितना शोर मचा पाओगे।

जिसे बोलना आता उसके
गधे यहाँ पर बिक जाते हैं।
जो चुप रहता उसके घोड़े,
नहीं उम्रभर बिक पाते हैं।
लिखकर रख लो, बेशर्मी से
जितनी शर्म पचा पाओगे।
उतने सफल कहाओगे तुम,
जितना शोर मचा पाओगे।

जो भारी थे, गए गर्त में,
हल्के, ऊपर उछल गए हैं।
यहाँ सफलता के पैमाने,
पूर्णरूप से बदल गए हैं।
जहाँ केंचुए पूज्य, वहाँ पर
कब तक रीढ़ बचा पाओगे?
उतने सफल कहाओगे तुम,
जितना शोर मचा पाओगे।

***

रचे स्वर्ग संन्यासी...

कैसी भीड़, बियाबां कैसा?
कैसे लख-चौरासी?
जहाँ बैठे तहाँ धूनी रमाए,
रचे स्वर्ग संन्यासी।

बीच शहर में अनहद बाजे,
छोर मिले जब अपना
नयन मूँदकर जागे, देखे
खुले नयन से सपना।

जिस दिन से मन हुआ कबीरा,
क्या मगहर, क्या कासी?
जहाँ बैठे तहाँ धूनी रमाए,
रचे स्वर्ग संन्यासी।

***

सिरफिरा हूँ...

सिरफिरा हूँ, बूँद में सागर डुबोने चल पड़ा हूँ।

आज संबंधों की उर्वर भूमि, ऊसर हो गई है।
मानवी संवेदनाएँ, धूल-धूसर हो गई हैं।
फिर भी कल्पित मृगतृषा की, बाँधकर आँखों पे पट्टी,
पत्थरों पर, भावना के बीज बोने चल पड़ा हूँ।
सिरफिरा हूँ, बूँद में सागर डुबोने चल पड़ा हूँ...

भावनाएँ शब्द बनकर, गीत में जो ढल रही हैं,
ये कलम की सिसकियाँ हैं, काग़ज़ों को छल रही हैं।
अर्थ पंगु हो चुके हैं, जानता हूँ, किंतु फिर भी,
टूटते धागे में कुछ मोती पिरोने चल पड़ा हूँ।
सिरफिरा हूँ, बूँद में सागर डुबोने चल पड़ा हूँ...

ऐसा लगता है सरासर झूठ हैं अनुबंध सारे।
साँसें हैं बहती नदी सी, और हम सूखे किनारे।
स्मृति की ओस-भीगी पंखुड़ी ताज़ा रहे बस,
इसलिए फिर नयन-कोरों को भिगोने चल पड़ा हूँ।
सिरफिरा हूँ, बूँद में सागर डुबोने चल पड़ा हूँ...

कल मिला था एक झरना, झूमता, ख़ुद को लुटाता,
कह रहा था, नीर धर लेता, तो क्या झरना कहाता?
मैं मेरे भीतर रहा जब तक, स्वयं से मिल न पाया,
ख़ुद को पाने के लिए ही, ख़ुद को खोने चल पड़ा हूँ।
सिरफिरा हूँ, बूँद में सागर डुबोने चल पड़ा हूँ...

***

बेटे, दुःख अपनाना सीखो...

बेटे, दुःख अपनाना सीखो।

ख़ुशियाँ पलभर को आती हैं,
आते ही गुम हो जाती हैं।
दुःख जीवनभर का साथी है,
दुःख को मित्र बनाना सीखो।
बेटे, दुःख अपनाना सीखो।

दुःख अक्सर निकला करता है
आँसू बन भीगी आँखों से
पंछी के टूटे पाँखों से
बिरहन की उठती बाँहों से
और मन की ठंडी आहों से
तन्हाई में पुरवाई से
मातम करती शहनाई से
मन की अगणित पीड़ाओं से
वृद्ध देह की रेखाओं से
बीते क्षण, दिन और सालों से
सन की तरह श्वेत बालों से
छालों भरे, थके पाँवों से
ग़ज़लों, गीतों, कविताओं से
दुःख अक्सर निकला करता है।

दुःख अतीत की एक धरोहर,
दुःख को व्यर्थ गँवाना ना तुम।
छालों को रखना सहेजकर,

आँसू भी टपकाना ना तुम।
तुम ही दुखी नहीं हो जग में,
दुखद घड़ी, सब पर आई है।
राम रहे वन में, महाराणा ने
तृण की रोटी खाई है।
दुःख सहने का मज़ा निराला,
दुःख संग साथ निभाना सीखो।
बेटे, दुःख अपनाना सीखो।

आख़िर दुःख का मतलब क्या है?
भरी दोपहर, तपन में श्रम करते
नन्हे हाथों से पूछो।
लावारिस, बेनाम, सिसकते
झुके हुए माथों से पूछो।
हैं अटूट, सहकर जो विपदा,
सब्र के उन बाँधों से पूछो।
युवा पुत्र की अर्थी उठाई,
उन बूढ़े काँधों से पूछो।
जिसके लिए सिंदूर धूल है,
जाकर उस विधवा से पूछो।
मृत्यु शैय्या पर, अपने लाल की,
बाट जोहती माँ से पूछो।
आख़िर दुःख का मतलब क्या है?

यह आवश्यक नहीं कि, दुःख
सहनेवाला हरदम रोता है।
दुःख उसको ही मिलता जिसमें,
सहने का साहस होता है।

सूली पर चढ़कर भी ईसा के
चेहरे पर शांति बसी थी।
भगतसिंह, अशफ़ाक़ को फाँसी
हुई मगर, अधरों पे हँसी थी।
दुःख तो वीरों का आभूषण है,
कायर क्या दुःख को जानेगा?
जिसने दुःख की शक्ल न देखी,
वह क्या दुःख को पहचानेगा?
दुःख में भी आनंद छिपा है,
दुःख को गले लगाना सीखो।
बेटे, दुःख अपनाना सीखो।

***

वो साथ चलें...

जो लड़ पाएँ गद्दारों से, वो साथ चलें।
जो खेल सकें हथियारों से, वो साथ चलें।
है कलियों की चाहत जिनको, वो ना आएँ।
जो शूल चुनें गुलज़ारों से, वो साथ चलें।

है राह मेरी दुश्वार बड़ी, तुम क्या जानो!
है क़दम-क़दम पर मौत खड़ी, तुम क्या जानो!
मेरे मुस्काने से भ्रम में मत पड़ जाना,
कब लग जाए अश्कों की झड़ी, तुम क्या जानो!
है चाह जिन्हें शीतलता की, आराम करें,
जो गुज़र सकें अंगारों से, वो साथ चलें।

हम हैं यथार्थ के ठोस धरातल के वासी,
हम सपनों का संसार नहीं देखा करते।
हम सात समंदर पार नज़र रखने वाले,
ये छोटे-मोटे ज्वार, नहीं देखा करते।
है जिसे ज़रूरत कश्ती की, तट पर ठहरें,
जो टकराएँ मझधारों से, वो साथ चलें।

जो हार चुके हैं जीवन से, वो कायर हैं,
तुम लड़ पाओ कठिनाई से, तो बात बने।
संघर्ष प्रमाणित करता है कि जीवित हो,
जो उदासीन हो, उस जीवन के क्या माने?
है इंतिज़ार जिनको भी सुबह का, रुके रहें,
जो जूझ सकें अँधियारों से, वो साथ चलें।

दुनिया है, दुनिया के भी दो पहलू हैं,
दुनियावाले फिर कैसे अपवाद रहें?
मौत भली होती है इज़्ज़त की लेकिन,
ज़िल्लत के जीवन से, इतना याद रहे।
है जिन्हें प्रेयसी की चिंता, वो घर बैठें,
जो ब्याह करें तलवारों से, वो साथ चलें।

***

साँचा तेरा एक नाम...

झूठी ये माया, झूठी ये काया, झूठी ये दुनिया तमाम।
साँचा तेरा एक नाम... ओ मेरे राम।

ओ मूढ़ पापी, माटी के पुतले, तू है अभागा।
माया के मद में डूबा रहा, उम्रभर तू ना जागा।
दिन-रात माला फेरी मगर, निज मन को न धोया।
स्वारथ में पड़कर, पा ना सका कुछ, जीवन भी खोया।
रिश्ते भी झूठे, नाते भी झूठे, संबंध झूठे तमाम।
साँचा तेरा एक नाम... ओ मेरे राम।

धरती को बाँटा, अंबर को बाँटा, सागर को बाँटा।
इंसां को बाँटा, बाँटा वतन को, और घर को बाँटा।
रोते हुए के आँसू न पोंछे, पत्थर को पूजा,
इंसान होकर ईश्वर को बाँटा, ये मेरा, ये दूजा।
राजे भी झूठे, झूठे सिंहासन, मालिक है वो, सब ग़ुलाम।
साँचा तेरा एक नाम... ओ मेरे राम।

नश्वर है काया, नश्वर जगत है, सब हैं विनाशी।
है सब जगह वो, फिर कैसा काबा, फिर कैसी काशी?
जिस पल जहाँ सिर झुक जाए समझो, सजदा हुआ है,
साँसें हृदय में उतरे तो समझो, उसने छुआ है।
मंदिर भी झूठे, मस्ज़िद भी झूठी, झूठे ये तीरथ ये (सारे)धाम।
साँचा तेरा एक नाम... ओ मेरे राम।

***

मेरा दुःख कम हो जाता है...

अविरल अश्रु बहाती आँखों के संग मिलकर रो लेने से,
मैंने यह महसूस किया है, मेरा दुःख कम हो जाता है।

जब भी पुष्प खिला कोई तो, काँटों ने षड्यंत्र रचाया,
पंखुड़ियों का विच्छेदन कर, ख़ुश होकर त्योहार मनाया।
लहूलुहान वह फूल अभागा, सिसक रहा था दूर अकेला,
पूछ रहा था काँटों से, मेरी बरबादी से क्या पाया।
किसी निर्दोष पुष्प की रक्षा करते, काँटा चुभ जाने से,
मैंने यह महसूस किया है, मेरा दुःख कम हो जाता है।

मत पूछो मंज़िल की दूरी, साहस है तो बढ़ना सीखो,
लक्ष्य-प्राप्ति निश्चित है इक दिन, हर मुश्किल से लड़ना सीखो।
दृढ़निश्चय की तुलना में तो, हिमगिरि भी बौना लगता है,
अनुगमन पुनरावृत्ति से अच्छा, नव-पथ गढ़ना सीखो।
पथरीले पथ पर छलनी पाँवों के संग चलते जाने से,
मैंने यह महसूस किया है, मेरा दुःख कम हो जाता है।

***

मेरा वो गाँव लौटा दो...

जो पगडंडी पे चलते थे, मेरे वो पाँव लौटा दो,
तुम्हारा शहर तुम रख लो, मेरा वो गाँव लौटा दो।

मेरा वो गाँव, जिसके गर्भ में नित प्यार पलता है,
उछलते-कूदते पंछी के संग सूरज निकलता है।

जहाँ पर एक ही मिट्टी है सारे गाँव की माता,
जहाँ पर एक ही नाता है, भाईचारे का नाता।

जहाँ ना धर्म-जाति का, कोई भी भेद बसता है,
फ़क़त इंसान रहते हैं, जहाँ पर प्रेम हँसता है।

जहाँ सब लोग पीते हैं, पुराने कुएँ का पानी,
जहाँ पर एक ही बूढ़ी है सारे गाँव की नानी।

जहाँ रातों के अँधियारे को चंदा रोक लेता है,
जहाँ पर जेठ की गर्मी को बरगद सोख लेता है।

जहाँ गाता है कोई माहिया, खेतों की मेड़ों पर,
जहाँ पर कूकती है कोकिला, अंबुवा के पेड़ों पर।

जहाँ सूरज की लाली सुबह गीता गुनगुनाती है,
जहाँ बाद-ए-सबा कुरआन की आयत सुनाती है।

जहाँ हर साल चंदन ईद की ख़ुशियाँ मनाता है,
जहाँ बचपन से गंगा से ज़फ़र राखी बँधाता है।

जहाँ चरवाहे की बंसी, किशन-सी तान देती है,
जहाँ ग्रामीण-बालाओं में, राधा साँस लेती है।

जहाँ मिट्टी में भक्ति-भाव की ख़ुशबू समाती है,
नमाज़ी की तरह सजदे में फसलें सिर झुकाती हैं।

मेरे उस गाँव ने ग़ैरों को चाहा, अपनों से बढ़के,
यहाँ अपनों के लहू से लथपथ हैं सभी सड़कें।

तुम्हीं को हो मुबारक ये घने कंक्रीट के जंगल,
मुझे तो बूढ़े पीपल की वो ठंडी छाँव लौटा दो।

तुम्हारा शहर तुम रख लो, मेरा वो गाँव लौटा दो।

मैं जब भी गाँव जाता हूँ, लिपट जाती है तब मुझसे,
बड़े ही अपनेपन से गलियों की वह धूल और मिट्टी।

कि जैसे माँ कोई बाँहों में भरकर लाल को चूमे,
निहारे देर तक, बालों में अपनी उँगलियाँ फेरे।

नयन में बाँध लेकर आँसुओं का काँपते लब से,
ज्यों भर्राए गले से पूछे, बेटा कैसा है रे तू?

मैं अपने आँसुओं को बहने से न रोक पाता हूँ,
थके पंथी की तरह बस वहीं पर बैठ जाता हूँ।

सुनाई पड़ता चिर-परिचित पपीहे का वही गाना,
ओ साथी, छोड़कर हमको, कहीं तुम फिर न खो जाना।

अचानक झूमते बच्चों की टोली घेर लेती है,
हे! 'चाचा आए', 'चाचा आए', 'चाचा आए' कहती है।

उन्हीं में से कोई नन्हा, मुझे झकझोर देता है,
मेरी उँगली पकड़कर मुझसे बरबस पूछ लेता है।

'छमज आती है ना तुमको, हमाली तोतली भाछा?
हमें तुम छोल के, फिल तो नई जाओगे न चाचा?'

'अगल जाओगे तुम तो देखना हम लूथ जाएँगे,
खिलौने दोगे हमको फिल भी हम ना मुछकुलाएँगे।'

ये उसकी तोतली बोली, कलेजा चीर जाती है,
मेरी आँखों में उस परदेस की तस्वीर आती है।

जहाँ मैं खोजता फिरता था, हर आराम जीवन का,
मगर था ख़ाली-ख़ाली सा, कोई कोना मेरे मन का।

कहाँ ये गाँव, जो अपनों के दुःख में रोज़ जलता है,
कहाँ परदेस वो जिसमें, मशीनी-राज चलता है।

रखे बुनियाद युद्धों की, बढ़ावा दे जो शस्त्रों को,
यही वो शस्त्र हैं, पलभर में जो लीलें सहस्त्रों को।

हाँ, माना चाँद पर तुम जा चुके, कोरी बुलंदी है,
तरक़्क़ी जिसको तुम कहते हो वो एक दौड़ अंधी है।

यही विज्ञान है तो सच कहो, अज्ञान फिर क्या है?
यही इंसान है तो सच कहो, शैतान फिर क्या है?

मुझे मतलब नहीं तुम बम बनाओ, सब जला डालो,
ज़रा-से स्वार्थ में पड़कर ज़माने को मिटा डालो।

जहाँ तक नापनी है नाप लो अंबर की तुम दूरी,
मगर ये जान लो तृष्णा कभी होती नहीं पूरी।

मुझे परवाह नहीं सागर का सीना चीर डालो तुम,
मेरे बचपन की, काग़ज़ की वो छोटी नाव लौटा दो।

तुम्हारा शहर तुम रख लो, मेरा वो गाँव लौटा दो।

***

चलो, मृत्यु को गले लगाएँ...

चलो, मृत्यु को गले लगाएँ।
इस जग को तो देख चुके, अब
खोज-ख़बर उस जग की लाएँ।
चलो मृत्यु को गले लगाएँ।

चंद शब्द मैं, चंद शब्द तुम,
मिल बैठे तो छंद हो गया।
साथ ज़रा-सा और बढ़ा तो,
जीवन का अनुबंध हो गया।
नदी-नाव संयोग है जीवन,
परम सत्य को क्यों झुठलाएँ?
चलो मृत्यु को गले लगाएँ।

क्यों सोएँ सपनों में बेसुध,
क्यों दुनिया से यारी कर लें?
न जाने कब आए बुलावा,
पूरी हर तैयारी कर लें।
दुनिया 'पथ' है, 'लक्ष्य' नहीं है,
याद रखें, सबको समझाएँ।
चलो मृत्यु को गले लगाएँ।

किंतु रुको, मृत्यु को समझो,
जहाँ चले यूँ बिना विचारे?
देह त्यागना मृत्यु नहीं है,
अंतर्मन का दीपक बारें।
मन की चंचलता को मारें,
सुख-दुःख सदा सहज अपनाएँ।
चलो मृत्यु को गले लगाएँ।

***

गुनगुना ऐ मन मेरे...

गुनगुना ऐ मन मेरे, कुछ गुनगुना।

तू अकेला ही सही तो क्या हुआ?
आ ज़रा कुछ दूर संग चल तो सही,
इस बहाने चार पल कट जाएँगे।
ये भी क्या कम है जो दुःख छाए अभी,
चार पल को ही सही, छँट जाएँगे।
दर्द ने लब सिल दिए तो ग़म न कर,
कंठ में ही चल नए कुछ स्वर बना।
गुनगुना ऐ मन मेरे, कुछ गुनगुना।

देख सबको ग़ौर से, फिर ये बता,
कैसे जीते, मान जाते हार अगर?
बोझ बिन, हैं बोझ काँधे, याद रख,
चल नई कुछ हौसले की बात कर।
बात, जिसमें ज़िंदगी के गीत हों,
कुछ मेरी सुन और कुछ अपनी सुना।
गुनगुना ऐ मन मेरे, कुछ गुनगुना।

चल चुनें तिनके, बनाएँ घोंसला,
चल उगाएँ आस्था के पर नए।
आस के आकाश में उड़ जाएँ फिर,
नैन में पाले हुए, मंज़र नए।
चल क्षितिज से मिलके आएँ, दो घड़ी,
बैठने से कम न होगी वेदना।
गुनगुना ऐ मन मेरे, कुछ गुनगुना।

***

सबको मरघट में जाना है...

जीवन इक रैन-बसेरा है,
दो पल के लिए ठिकाना है।
ज़्यादा ऊँचे घर मत बाँधो,
सबको मरघट में जाना है...

ये घोड़ा, गाड़ी, धन, दौलत,
सब ठाठ पड़े रह जाएँगे।
तन अग्नियान में चल देगा,
सब मूक खड़े रह जाएँगे।
काया के झीने कपड़े में,
साँसों का ताना-बाना है।
सबको मरघट में जाना है...

बंधु, भ्राता और सखा सभी,
भौंचक्क ठगे रह जाएँगे।
सूनी-सूनी दीवारों पर,
बस, चित्र लगे रह जाएँगे।
अँधियारी क़ब्र के बिस्तर में,
माटी ही ओढ़, बिछाना है।
सबको मरघट में जाना है...

***

तोते रटते रह जाते हैं...

श्लोकों की हर स्वर-गंगा के,
सब अर्थ, व्यर्थ बह जाते हैं।
बस लाते नहीं आचरण में,
तोते रटते रह जाते हैं।

अध्याय याद करने भर से ही,
ज्ञान नहीं मिल पाएगा।
दो-चार पाठ पढ़ लेने से,
भगवान नहीं मिल पाएगा।
पोथी पढ़ते-पढ़ते जीवन के,
दिन घटते रहे जाते हैं।

माथे पर तिलक लगाने से,
क्या सचमुच ज्ञानी हो बैठे?
ये नश्वर माटी के पुतले,
कितने अभिमानी हो बैठे!
काया की इमारत के खंडहर,
पल-पल मिटते रह जाते हैं।

शब्दों को याद किया लेकिन,
अर्थों को भूल गए तोते।
दुनिया को पाठ पढ़ाते,
निज-कर्मों को भूल गए तोते।
धर्मी बनते हैं और धर्मों में,
ही बँटते रह जाते हैं।

***

आशाओं का अंत नहीं है...

मानव-मन गहरा सागर है,
या कोई पगला निर्झर है!
या मदमस्त भोर का पंछी,
प्रतिपल उड़ने को तत्पर है।

मन के भ्रमित सूक्ष्म उद्गम से,
तृष्णाओं की धार बही है।
कण-कण, जन-जीवन है नश्वर,
आशाओं का अंत नहीं है।

आशा में ही छिपी निराशा,
आस, निराशा का उद्गम है।
फिर भी अति आवश्यक है यह,
इस पर ही दुनिया क़ायम है।

अगर हृदय में आस न हो तो,
मन इक ज़ंग लगा पुर्ज़ा है।
आस में कल का सार छिपा है,
यही तो जीवन की ऊर्जा है।

समय मिले तो चिंतन करना,
हँसी-हँसी में बात कही है।
कण-कण, जन-जीवन है नश्वर,
आशाओं का अंत नहीं है।

***

कपड़े क्यों रँगाया...

मन भक्ति में नाहीं रँगाया रे,
कपड़े क्यों रँगाया, बावरे...
मन ईश्वर में नहीं लगाया रे,
चंदन क्यों लगाया, बावरे...

त्यागी बनकर, वन-वन भटका,
रिश्ते-नातों में मन अटका।
मन से गई न माया रे,
कपड़े क्यों रँगाया, बावरे...

क्रोध न छोड़े, मोह न छोड़े,
रामनाम की चादर ओढ़े।
ख़ुद को ही भरमाया रे,
कपड़े क्यों रँगाया, बावरे...

कण-कण में है वो अविनाशी,
मन के भीतर काबा-काशी।
जिन खोजा, तिन पाया रे,
कपड़े क्यों रँगाया, बावरे...

***

भए हम परदेसी...

हमसे छूटा पिया का देस, भए हम परदेसी।
प्रेम-दिवानी, मैं का जानूँ, ज्ञान भरे उपदेस?
भए हम परदेसी...

ब्याह कियो, नैहर मा छोड्यो, भूल गयो तुम गौना।
साँस के तीर हृदय को भेदे, काटे नर्म बिछौना।
बिरहन को जग 'दुल्हन' बोले, मन पर लागे ठेस।
भए हम परदेसी...

निस दिन नैना राह तके है, बैरन हो गई निंदिया।
मैं युग-युग की प्यास अधूरी, तुम स्वाति की बुंदिया।
पागल-चित चातक नहीं जाने, का जप-तप, का भेस?
भए हम परदेसी...

मैं नश्वर माटी की गुड़िया, तुम घट-घट के वासी।
यह दूरी है, या कि निकटता, जल बिच मीन पियासी!
तुम मालक, पालक, तुम दाता, हम दर के दरवेस।
भए हम परदेसी...

***

ऐ दिल, ऐ यार मेरे...

ऐ दिल! ऐ यार मेरे, मायूस ना हो।
होना है जो, वो ही होगा, तुम कुछ भी चाहो।

इंसां के बस में कहाँ है, क़िस्मत का लेखा?
उम्मीद सबको है लेकिन, कल किसने देखा?
माना तू है आज तन्हा, कल जाने क्या हो!
क़दमों में दुनिया हो, बाँहों में ये आसमां हो।

ये सच है जो तूने सोचा, वो हो ना पाया।
लेकिन बता क्या सभी ने, सब-कुछ है पाया?
चल छोड़ जाने दे पगले, ग़मगीन न हो।
है कौन ऐसा कि जिसको, ग़म ना मिला हो।

बदलेंगी करवट ये रातें, तुम देख लेना।
उम्मीद को अपने दिल से, मिटने न देना।
रोशन नहीं होंगी रातें, ना दिल को जलाओ।
आँसू हैं अनमोल इनको, यूँ ना गँवाओ।

***

चल रे मन बंजारे...

चल रे मन बंजारे... चल रे मन बंजारे..
दूर क्षितिज के पार से तेरी मंज़िल तुझे पुकारे।
चल रे मन बंजारे।

हर चौखट उसका ही घर है,
सामने हो जो, सो बेहतर है।
वो मंदिर-मस्ज़िद हो चाहे, गिरजे या गुरुद्वारे।
चल रे मन बंजारे।

गाता चल मुस्काता चल तू,
हर दिल को महकाता चल तू।
ख़ुशबू को कब रोक सकेंगे सरहद के बँटवारे?
चल रे मन बंजारे।

भीगी आँखों से मिलना है,
सूखे होंठों पर खिलना है।
बूढ़े जर्जर हाथों की अब लाठी है बनना रे।
चल रे मन बंजारे।

***

तुमको मुबारक हो...

तुमको मुबारक हो ये, तुम्हारे चेहरे पर चिपकाई ख़ुशियाँ।
मुझको तो मेरी आँखों का, बिन बरसा बादल प्यारा है।

भीख माँगकर इन होंठों पर, क्या झूठी मुस्कान सजाना
यूँ ख़ुद को ही धोखा देना, बोलो, क्या ये भूल नहीं है?
गंगाजल की पावनता को, मैं क्या जानूँ गंगा जाने,
पर मेरी आँखों के आँसू, ये काग़ज़ के फूल नहीं हैं।
पानी क्या होता है पूछो, मरुथल की उस नागफणी से,
जिसको अपनी पीर के सागर का रेतीला जल प्यारा है।

सुबह को अलसाई किरणों का, अँगड़ाई लेकर मुस्काना,
ओस के छूते ही छुईमुई का, शर्माना अच्छा लगता है।
शाम ढले कंकर की धुन पर, झील की ख़ामोशी का गाना,
मुझको अक्सर लहरों के संग दोहराना अच्छा लगता है।
झरनों ने जो बाँध रखी है, दिल आया है उस पायल पर,
अल्हड़-सी इस पुरवाई का, ढलका-सा आँचल प्यारा है।

बर्फ़ीले संबंधों के इन, पीले पत्तों की क्या चिंता?
यह एकाकी पेड़ अभी भी, ठूँठ सही, बेजान नहीं है।
अब पूनम हो, चाहे अमावस, किरणों से क्या लेना-देना?
सूरज का दुनिया पर होगा, जुगनू पर एहसान नहीं है।
विद्वानों के साए से भी दूर बहुत रहता है अक्सर,
माना दिल पागल है लेकिन, फिर भी ये पागल प्यारा है।

***

ज़िंदगी जीने की ज़िद करती रही...

इक तरफ़ से हर घड़ी मरती रही,
ज़िंदगी जीने की ज़िद करती रही।

पूर्णिमा को अब अमावस क्या कहें,
हम ही थे लाचार-बेबस क्या कहें!
झील की लहरें थी, हम थे, चाँद था,
जो हुआ, सो हो गया, बस क्या कहें!
अंजुली से चाँदनी झरती रही,
ज़िंदगी जीने की ज़िद करती रही।

यूँ तो सब-कुछ है मगर, क्या रह गया?
कह गया, कुछ सह गया, कुछ बह गया।
कौन, वो 'शेखर' जो कुछ पागल-सा था?
खंडहर था, वो तो कबका ढह गया।
हाथ-भर नभ, पाँव-भर धरती रही,
ज़िंदगी जीने की ज़िद करती रही।

***

गीत मेरे लफ़्ज़ों के पंछी दीवाने...

गीत मेरे लफ़्ज़ों के पंछी दीवाने,
आ जाते हैं, तन्हाई से बतियाने।

प्यासे अधरों पर दरिया से बहते हैं,
टूटे सपनों की शाखों पर रहते हैं।
काँटों से ज़ख़्मी फूलों के कानों में,
चुपके-चुपके अपना दुखड़ा कहते हैं।

बुलबुल की आहों में लगते सुस्ताने,
गीत मेरे लफ़्ज़ों के पंछी दीवाने।

इनका क्या आँसू पीना, ग़म खा लेना,
दिल बहलाने को थोड़ा-सा गा लेना।
तेरी यादों के अंबर से यारी है,
दुनिया के पिंजरे से इनको क्या लेना?

ख़ामोशी में लिखें हवा पर अफ़साने,
गीत मेरे लफ़्ज़ों के पंछी दीवाने।

***

अच्छे हैं मदहोशी के पल...

अच्छे हैं मदहोशी के पल,
होश जगाते, दोष दिखाते, ध्यान सजाते।
अच्छे हैं मदहोशी के पल।

अपने ही दर्पण से ख़ुद को,
जाने कितनी बार गुज़ारा।
लेकिन आँख मिला ना पाए,
परछाई ने लाख पुकारा।
कोई इजाज़त दे, ना दे, कहता जाऊँगा...
सच्चे हैं मदहोशी के पल,
धार बढ़ाते, साथ निभाते, पार लगाते।
अच्छे हैं मदहोशी के पल।

शंख, सीपियाँ, रेत-घरौंदे,
रोज़ाना गुड़िया की शादी।
चंद माँगने का साहस, और,
ज़िद करने की भी आज़ादी।
कोई अन्यथा ले, ना ले, कहता जाऊँगा...
बच्चे हैं मदहोशी के पल,
धूल उड़ाते, धूम मचाते, झूम रिझाते।
अच्छे हैं मदहोशी के पल।

ये उसके अनुभव के पल, जो
शाश्वत भी, अनदेखा भी है।
दुविधा में मन, उधर बुलावा,
इधर लक्ष्मण-रेखा भी है।

कोई ये समझे, ना समझे, कहता जाऊँगा...
कच्चे हैं मदहोशी के पल,
जाम उठाते, थाम न पाते, टूट बिलाते।
अच्छे हैं मदहोशी के पल।

***

रात ढल रही है...

अँधियारे बिस्तर पर, आँख जल रही है,
रात ढल रही है।

नाजायज़ सपनों का, गर्भपात करने को,
अनब्याही इच्छाएँ, खिल रहीं बिखरने को,
प्रतिबंधित अभिव्यक्ति, कोख पल रही है।
रात ढल रही है।

भूख डाँटकर कहती, जी रहे ग़नीमत है,
आज भी सुदामा की, झोंपड़ी यथावत है।
मुट्ठीभर आस लिए, साँस चल रही है।
रात ढल रही है।

अंतहीन मरुथल के, नागफणी रिश्तों में,
आए थे एकमुश्त, बँट गए हैं किश्तों में।
पलकों पर, अधरों की प्यास गल रही है।
रात ढल रही है।

पूरब में किरणों का, शोर सुन रहा हूँ मैं,
पंछियों के कलरव में, भोर सुन रहा हूँ मैं।
अब हवा को पेड़ों की नींद खल रही है।
रात ढल रही है।

***

जैसे-तैसे दिन बुनता हूँ...

जैसे-तैसे दिन बुनता हूँ, रात उधड़ जाती है,
जितना पाँव सिकोड़ूँ, चादर छोटी पड़ जाती है।

रोज़ हथेली के छाले, कुछ और कड़े हो जाते,
रोज़ हृदय के घाव फूटकर, और बड़े हो जाते।
सींचूँ ख़ून-पसीना फिर भी, फसल उजड़ जाती है।
जितना पाँव सिकोड़ूँ, चादर छोटी पड़ जाती है...

व्यथा-कथा के गीले आखर, काग़ज़ पर फैलाते,
छिनी धूप की बाट जोहते, ख़ुद पर ही झल्लाते।
दिनचर्या की थकी-थकी-सी, साँस उखड़ जाती है।
जितना पाँव सिकोड़ूँ, चादर छोटी पड़ जाती है...

बुझती आँखों में पथराए, स्वप्न लिए जाता हूँ।
लम्हों पर पैबंद लगाकर, उम्र सिए जाता हूँ।
उम्मीदों की लाश सुबह तक, और अकड़ जाती है।
जितना पाँव सिकोड़ूँ, चादर छोटी पड़ जाती है...

***

बड़ा है आत्मबल...

यहीं पे है भला-बुरा, यहीं पे छाँव-धूप है
है जैसी अपनी सोच, वैसा ज़िंदगी का रूप है।
करें यक़ीन ख़ुद पे जो, वो होते हैं सफल
बड़ा है आत्म-बल
आत्म-बल! आत्म-बल!!

स्वयं को साध ना सके, तो 'साधना' ही व्यर्थ है
तू अंश है विराट का, सशक्त है, समर्थ है
विवेक से तू काम ले
स्वयं का हाथ थाम ले
तू चाह ले तो होंगी सारी मुश्किलें सरल
बड़ा है आत्म-बल
आत्म-बल! आत्म-बल!!

स्वयं चुनाव कर, यहाँ सृजन भी है, विनाश भी
असत्य भी है, सत्य भी, तिमिर भी है, प्रकाश भी
तू चाहता है क्या, बता?
तू ख़ुद ही है तेरा पता
समय निकाल! ख़ुद को कभी ढूँढने निकल!
बड़ा है आत्म-बल
आत्म-बल! आत्म-बल!!

समय जिसे तराश दे, वो ज़िंदगी सँवर उठे,
चमक उठे ये मन, ख़ुशी से आत्मा ये भर उठे!
अतीत के ये रास्ते, भविष्य के हैं वास्ते,
इन्हीं के दम से आज है, इन्हीं के दम से कल
बड़ा है आत्म-बल
आत्म-बल! आत्म-बल!!

***

छोड़ सब तू, राह ख़ुद अपनी बना...

छोड़ सब तू, राह ख़ुद अपनी बना।

चाटकर तलुए किसी के,
हाथ जो आए
भूल जा, ऐसी तरक़्क़ी,
भाड़ में जाए।
सब तेरे बस में यहीं है
तू किसी से कम नहीं है।
पत्थरों के सामने मत गिड़गिड़ा
छोड़ सब तू, राह ख़ुद अपनी बना।

माँगना क्या रोशनी की
भीख सूरज से
ज़लज़ला आ जाएगा,
तू देख तो जल के।
स्याह रातों के अँधेरे
ये पड़ेंगे पाँव तेरे।
बनके जुगनू रोशनी अपनी लुटा
छोड़ सब तू, राह ख़ुद अपनी बना।

***

माँ भारती के लिए...

मखमली तृण की चादर चहुँ ओर बिछी,
सिर पे घनेरे, हरे तरुओं की छाया है।
खिली-खिली कलियों की रंग-बिरंगी छटा,
देखते ही इंद्र-धनुष शरमाया है।

नभ पर अटखेली करते मेघों के शिशु,
सावन में वर्षा का मन हर्षाया है।
मनुज की कौन कहे, देवों को भी हैरत है,
धरती पे स्वर्ग कहाँ से चला आया है!

कहीं हिम-आच्छादित पर्वतों की श्रृंखलाएँ,
कहीं पे हरित, पल्लवित फुलवारी है।
सरसों के खेत कहीं स्वर्ण की भाँति सजे,
कहीं ख़ुशबू से तर, केसर की क्यारी है।

पंछियों का कलरव साँझ के सूरज तले,
झरनों के नीर की खनक मनोहारी है।
बड़े ही नाज़ों से इसे पाला है वसुंधरा ने,
भारती तो धरती की बिटिया दुलारी है।

***

मनवा रे मनवा...

मनवा रे मनवा, किसकी तू जोहे बाट!
काहे जागत नयन कपाट
मनवा रे मनवा, किसकी तू जोहे बाट!

साँझ ढलत, छलकत, बिलखत नित,
प्रीत-अगन सुलगाय।
हरस कहाँ प्रिय, दरस-परस बिन,
तरस-तरस मन जाय।
काहे, होत अधीर-उचाट!
मनवा रे मनवा, किसकी तू जोहे बाट!

स्वाति की बूँद, गगन घन तक तक,
चातक थक अकुलाए।
बिरहन की अँखियन से सुमन बन,
मन की थकन झर जाए
लागे सेज चिता, घर घाट!
मनवा रे मनवा, किसकी तू जोहे बाट!

***

हम तो हैं सदियों से एक...

हम तो हैं सदियों से एक, हैं अखंड हम,
स्वप्न में भी सोचना न, हम बँट जाएँगे।

मातृभूमि की सुरक्षा, लक्ष्य है हमारा एक,
बढ़े हैं जो क़दम, ना पीछे हट पाएँगे।

अभी तो कलम और हल है हाथों में पर,
वक़्त आएगा तो सीमाओं पे डट जाएँगे।

हमको बिखेरने के देखना न ख़्वाब कभी,
सामने बढ़ेंगे जो वो हाथ कट जाएँगे।

शांति और प्रेम को कायरता जो समझे तो,
चमन का हर फूल, शूल बन जाएगा।

मानवता सर्वोपरि धर्म है हमारा अभी,
फिर प्राण लेना ही असूल बन जाएगा।

सोते हुए शेरों को जो छेड़ोगे अगर तुम,
बाद में तुम्हारी बड़ी भूल बन जाएगा।

टकराएगा हमारे दृढ़निश्चय से तो,
पलभर में पहाड़, धूल बन जाएगा।

रामजी के भक्तों सुनो, ऐ ख़ुदा के बंदों सुनो,
वक़्त की है माँग, देशभक्त बन जाइए।

भेद-भाव छोटा-बड़ा-ऊँच-नीच का मिटाके,
स्वार्थ की सीमाओं से विरक्त बन जाइए।

हिंदू-मुस्लिम बनकर न अशक्त बनो,
भारतीय बनके सशक्त बन जाइए।

देश रूपी पौधा मुरझाने से बचाना है तो,
सींचने को, पानी नहीं, रक्त बन जाइए।

***

हे कवि! बलिदान दो तुम...

हे कवि! बलिदान दो तुम, तब कहीं उत्थान होगा।
क्रांति की बातें बहुत कीं, अब प्रलय का गान होगा।

काँपे नभ, डोले धरा, कुछ ऐसा तुम भूचाल कर दो,
दुश्मनों के ख़ून से, ये सारी धरती लाल कर दो।

हर तरफ़ हलचल मचे, कुछ इस तरह हुंकार भर दो,
फिर फड़क उठें भुजाएँ, जोश का संचार कर दो।

मौत को आवाज़ दो, बाँधो कफ़न, अर्थी सजा दो,
तुम समर भूमि में जाकर, स्वयं रणभेरी बजा दो।

दुश्मनी होती है कैसी, आज दुश्मन को दिखा दो,
आज हर ज़र्रे को स्वाभिमान की भाषा सिखा दो।

याद रखो, शीश कट जाए, मगर झुकने न पाए,
साँस रुक जाए मगर ये कारवाँ रुकने न पाए।

क़सम खा लो दुश्मनों का हर नगर श्मशान होगा।
हे कवि बलिदान दो तुम, तब कहीं उत्थान होगा।

व्यर्थ ये कविताएँ क्या, ये गीत, ग़ज़लें, तर्क क्या हैं?
तुम भी डींगें हाँको तो, नेता में, तुममें फ़र्क़ क्या है?

देना ही है कुछ तो साँसों को वतन के नाम कर दो,
करना ही है कुछ तो ख़ुद को देश पर क़ुर्बान कर दो।

रक्त श्वेत और शीत है, अब बातों से क्रांति न होगी,
अंधे-बहरों के नगर में, कलम से क्रांति न होगी।

लपलपाती लाल लहू की लपट से ललकार निकले,
अब अगर निकले तो केवल म्यान से तलवार निकले।

तुम हुए क़ुर्बां तो तुम पर देश को अभिमान होगा,
देशहित मरने से बढ़कर, क्या कोई सम्मान होगा!

हे कवि बलिदान दो तुम, तब कहीं उत्थान होगा।
क्रांति की बातें बहुत कीं, अब प्रलय का गान होगा।

***

मैं पुजारी गीत का...

मैं पुजारी गीत का, गुणगान लेकर क्या करूँ?
मैं प्यासा हूँ आशीष का, सम्मान लेकर क्या करूँ?

ऐसे अगणित लोग हैं, जो ख़ाक में ही खो गए,
व्यर्थ ही जीते रहे, फिर काल-कवलित हो गए।

हो दीर्घ पर निष्क्रीय हो, जीवन है वो किस काम का
कीड़े-मकोड़ों की तरह, जीना है केवल नाम का।

बोलो, तुम्हीं बोलो क्या उस जीवन का कोई अर्थ है?
ना लोकहित, ना देशहित काम आ सका जो, व्यर्थ है।

मिट जाएँगे परवाह नहीं, टकराएँगे तूफ़ान से,
होते हैं छोटे तप सभी, निज देशहित बलिदान से।

जाना है इनको एक दिन, तो प्राण लेकर क्या करूँ?
मैं प्यासा हूँ आशीष का, सम्मान लेकर क्या करूँ?

निर्दोष मृत पुष्पों के शव, ये फूलमाला किसलिए?
किसलिए सम्मान ये, श्रीफल-दुशाला किसलिए?

देना ही है तो दो मुझे विश्वास, कि कट जाओगे।
रणबाँकुरे बनकर समर में, सामने डट जाओगे।

दोगे तिलक निज रक्त से, माँ भारती के भाल को।
तुम खड्ग बनकर काट दोगे, शत्रु की हर चाल को।

हद हो चुकी है गर्त की, अब शीर्ष का उत्थान दो,
बिस्मिल, भगत, आज़ाद के सपनों का हिंदुस्तान दो।

जब रो रही हर आँख तो, मुस्कान लेकर क्या करूँ?
मैं प्यासा हूँ आशीष का, सम्मान लेकर क्या करूँ?

***

फिर तुम्हें आना ही होगा...

देश भट्टी, लोग ईंधन, राजनीति है तवा।
खादीधारी सेंकते हैं रोटियाँ अपनी सदा।

रात-दिन घोटाले करके काला पैसा पा रहे,
चील-कौवे नोचकर निज देश को ही खा रहे।

राज गिद्धों का यहाँ पर, ख़ाक ये जनतंत्र है
भूले आज़ादी के नारे, इनका बस एक मंत्र है।

अब कहाँ का ख़ून दो और अब कहाँ आज़ादी दूँगा?
तुम मुझे सूटकेस दो और मैं तुम्हें समृद्धि दूँगा।

भूल बैठे देश को, बस इनको घर से प्यार है।
देश जाए भाड़ में, इनका सुखी परिवार है।

चीज़ कुर्सी के सिवा कुछ दूसरी भाती नहीं।
शहीदों की भूलकर भी, याद तक आती नहीं।

मौत के फंदे को कैसे चूमा था खुदीराम ने
छोटी-सी थी उम्र पर, निर्भय था यम के सामने।

खेलने खाने के दिन थे, फाँसी पर झूला था वो।
था दीवाना देश का, घर-द्वार को भूला था वो।

जाने कितने राजगुरु, सुखदेव, सावरकर गए
जाने कितने चंद्रशेखर और भगत हँसकर गए।

कितने मंगल पांडे या अशफ़ाक़ और बिस्मिल गए
जाने कितने ही उधमसिंह मौत से जा मिल गए।

अब कहाँ रहते हैं वो, उनके ठिकाने हैं कहाँ?
आज़ादी के वो दीवाने, कौन जाने हैं कहाँ!

संगीनों की नोक से पूछो तो शायद कह भी दे,
जलियाँवाले बाग़ से पूछो तो शायद कह भी दे।

फाँसी के फंदे को शायद कुछ पता मालूम हो,
ख़ून से भीगी थी जो मिट्टी, उससे भी पूछ लो।

तोपों के मुँह पर ही शायद चीथड़ों के तार हो,
चमकती तलवारों पर शायद लहू की धार हो।

उन शहीदों की हैं नस्लें भूख की मारी हुई।
सैकड़ों सेनानियों की ज़िंदगी हारी हुई।

काले पानी की सज़ाएँ, पाशविक वो यातना,
फिर भी उन शेरों की नभ में गूँजती थी गर्जना।

जिस्म नंगा, खाल उधड़ी, पीठ पर रक्तिम प्रलय,
देह पर कोड़ों के धारे, मुँह में भारत माँ की जय।

क्या किया सरकारों ने उनके भले के वास्ते?
सबने अपनी कुर्सी देखी, अपने-अपने रास्ते।

ऊँची कुर्सी मिल गई तो ख़ुद पे इतराने लगे।
कंगूरे दो कौड़ी के, बुनियाद बिसराने लगे।

ओ शहीदों, क्यों हुए क़ुर्बान, क्या नादान थे?
तुम भी तो आख़िर किसी की आँखों के अरमान थे।

अपनी माता के बुढ़ापे का सहारा थे तुम्हीं
डूबते परिवार की ख़ातिर किनारा थे तुम्हीं।

बहन की डोली के बदले काँधे पर बंदूक ली
भावनाओं में बहे क्यों, क्यों भला ये भूल की?

क्यों मुहब्बत की वतन से, जान का सौदा किया?
मौत से शादी रचा ली, पत्नी को विधवा किया।

क्यों मिट बेकार, क्यों न कारवाँ रुकने दिया?
सिर कटा डाला, तिरंगा क्यों नहीं झुकने दिया?

क्यों तुम्हारा ख़ून खौला, खाई थी कैसी क़सम?
मरते-मरते भी लबों पर, क्यों था वंदे मातरम?

अब, देख सकते हो, तो देखो अपने घर की स्थिति
स्वप्न क्या देखे थे तुमने, कैसी उनकी परिणति।

सुन सकोतो सुनो, रखकर काबू में जज़्बात को,
पर ग़लत कहने से पहले, सोचना इस बात को

दो कमाते, एक बचाते, कुछ तो घर में डालते
कम-से-कम तुम अपना घर-परिवार ढंग से पालते।

देश को आज़ादी दिलवाकर भी तुमको क्या मिला?
रुक नहीं पाया है अब तक दासता का सिलसिला।

तुम हुए क़ुर्बान क्यों, हम सोचकर पछता रहे
सारी मेहनत तुमने की, और खीर कुत्ते खा रहे।

दौलते-आज़ादी को, चोरों के हाथों धर दिया
सोन-चिड़िया को शिकारी के हवाले कर दिया।

स्वाद अदरक का बताओ, बंदरों को क्या पता
आज़ादी का मोल क्या है, कायरों को क्या पता।

मिट रही वीरों की नस्लें, हीरों की इस खान में।
फिर तुम्हें आना ही होगा, अपने हिंदुस्तान में।

***

युद्ध और प्रेम...

शस्त्रों से जो हैं सुसज्जित, सभी कायर लोग हैं,
सिकंदर, नेपोलियन, हिटलर, सभी डरपोक हैं।

इनको डर है, नाम इनका मिट्टी में मिल जाए ना,
डरते हैं, साम्राज्य की गहरी जड़ें हिल जाएँ ना।

इसलिए सबको डराते, अपनी सेना भेजकर,
मानते ख़ुद को सुरक्षित, सबको कंपित देखकर।

चाहते हैं ये सभी कि इनसे सब भयभीत हों,
हारती जाए ये दुनिया, इनकी हरदम जीत हो।

किंतु क्या नफ़रत से कोई जीत पाया प्यार को?
मुझ पे यदि विश्वास ना हो, पूछ लो तलवार को।

आज़माना चाहो तो बंदूक उठाकर देख लो,
तुम मिटा सकते हो कितनों को, मिटाकर देख लो।

वीर की पहचान क्या है, कौन है निर्भय कहो
साहसी है वो ही, जिसके हाथों में ना शस्त्र हो।

देशहित में युद्ध करना, चाहे हो सकता सही
किंतु यह भी सत्य है कि, विश्वहित में यह नहीं।

घृणा की शुरुआत क्या है? निहित स्वार्थों से लगाव,
युद्ध की उत्पत्ति क्या है? प्रेम का मन में अभाव।

मान लो, इक झोंपड़ी, है तिमिर में डूबी हुई
इसका मतलब ये हुआ, वहाँ रोशनी बिलकुल नहीं।

है तिमिर की कल्पना यह, मनुज-मन की विकृति,
तिमिर तो है ही नहीं, है किरण की अनुपस्थिति।

प्रेम का दीपक जलाओ मन की कुटिया में ज़रा,
पाओगे कि प्रेम, और बस प्रेम है जग में भरा।

युद्ध तो है ही नहीं, यह भी है कल्पित आकृति,
युद्ध याने मनुज-मन में, प्रेम की अनुपस्थिति।

जिस तरह आँखों को खोले, कोई सो सकता नहीं,
वैसे ही जहाँ प्रेम हो, वहाँ युद्ध हो सकता नहीं।

जो शुरू हो शस्त्र से, उस युद्ध का परिणाम क्या?
पूज्य-पावन पृथ्वी पर, परमाणु बम का काम क्या?

मैं ज़रा पागल हूँ यारों, जाने क्या-क्या कह गया,
आप सोचो, सच कहा या भावना में बह गया।

***

अहा! मृत्यु!!

अहा मृत्यु तुम कितनी प्यारी,
कितनी शांत-सरल हो!
सच! कितनी निर्वैर, निष्कपट,
निर्मल और निश्छल हो!

अनायास अतिथि बनकर तुम,
द्वार सभी के आती।
अपनी उपस्थिति से,
सोते घर को पुन: जगाती।
सोए जन क्षणभर को जगते,
और फिर से सो जाते।
हो जाते निश्चिंत,
दिवा-स्वप्नों में फिर खो जाते।
भूल ही जाते हैं सब कि,
इस जग में तुम्हीं अटल हो।
अहा मृत्यु तुम कितनी प्यारी...

परिभाषित यहाँ सबने,
अपने ढंग से तुम्हें किया है।
जिसका जैसा दृष्टिकोण था,
वैसा नाम दिया है।
कोई तुम्हें 'निष्ठुर' कहता है,
'निर्मम' कोई बताता।
किंतु तुम्हारे अंतःस्थल में,
कोई झाँक न पाता।

क्रूर-काल की छाँव नहीं,
तुम चंद्र-सदृश उज्ज्वल हो।
अहा मृत्यु तुम कितनी प्यारी...

तुम अंतिम उत्सव जीवन का
भोर हो नव-जीवन की।
एक तुम्हीं जो सुध लेती हो
जीर्ण-शीर्ण इस तन की।
मोह-पाश में बँधे हुए जन
निज अतीत में जीते।
अंत समय में सबके ही घट
रह जाते हैं रीते।
ये जग बीता कल है, और
तुम आनेवाला कल हो।
अहा मृत्यु तुम कितनी प्यारी...

***

मृत्यु कहते सब जिसे...

मृत्यु कहते सब जिसे, वह सिर्फ़ तन का त्याग है।
वास्तविक मृत्यु नहीं है, उसका लघुतम भाग है।

देह बस मरती है, जीता है अहं, जीता है मन।
यह अहं और मन पुनः हैं प्राप्त करते पृथक तन।

दोनों इक सिक्के के पहलू, वासना से हैं भरे।
मृत्यु कब आसान है, है कौन जो सचमुच मरे?

ग़र तुम्हें विश्वास ना हो, स्वयं करके देख लो।
जैसे हो, वैसे रहोगे, ख़ुद ही मरके देख लो।

चौंकोगे पाकर, अरे, यह कैसा अद्भुत मेल है!
पाओगे कि आत्महत्या बच्चों का इक खेल है।

देह ही छूटी है केवल, शेष जो था, है वही।
देह का ही त्याग है यह, वास्तविक मृत्यु नहीं।

लाश कहते हैं जिसे हम, देह वो निष्प्राण है।
किंतु महामृत्यु का दूजा नाम ही निर्वाण है।

जो महामृत्यु को पाते, लौटकर आते नहीं।
सिंधु पानेवाले कुछ कतरों को ललचाते नहीं।

क्या कभी सोचा है तुमने, देह क्यूँ ये भार क्यूँ?
बात क्या आख़िर है, सारे जीवन का आकार क्यूँ?

जब तलक मन में अहम है, तभी तक आकार है।
जो अहं से मुक्त है, वह आकृति के पार है।

वायु, जल, अग्नि, मृदा, आकाश का आकार क्या?
पंचतत्वी देह के मन में, है अहं तो सार क्या?

अहंकारी ने सदा पाया नहीं, खोया ही है।
जागरण तो नाम का है, आदमी सोया ही है।

बढ़ता जाएगा अहं, तुम छोटे होते जाओगे।
और इक दिन देखना, ख़ुद ख़ाक में खो जाओगे।

किंतु मन के अहं को तुम, जब कभी पिघलाओगे।
दूसरे ही पल स्वयं में, एक वृद्धि पाओगे।

इस क़दर पिघलाओ कि परमात्मा से जुड़ सको।
इस क़दर पिघलाओ कि तुम भाप जैसे उड़ सको।

भाप बनकर उड़ गए, तो सारा अंबर हो तुम्हीं।
बूँद बन सिंधु में लौटे, सारा सागर हो तुम्हीं।

वायु, जल, पृथ्वी तुम्हीं, तुम ही अगन, आकाश हो।
पर ज़रूरी है तनिक ना, स्वयं का आभास हो।

सोचते हो तुम कि 'मैं' हूँ, इसलिए 'वो' है छिपा।
और यही कारण है अब तक, वो नहीं तुमको दिखा।

तुममें परमात्मा छिपा है, तुम स्वयं अवतार हो।
उसको पाने की डगर में भी तुम्हीं दीवार हो।

क्षुद्र सीमाओं को अपनी, लाँघकर देखो ज़रा।
तुममें भी ईश्वर छिपा है, जागकर देखो ज़रा।

पूछते हो व्यर्थ बातें, उसको हम ढूँढें कहाँ?
हर तरफ़ बिखरा है वो, तुम ढूँढते सारा जहाँ।

ढूँढना उसको नहीं है, ख़ुद को बस खोना ही है।
और तुम ख़ुद खो गए तो, वह प्रकट होना ही है।

थोथे ज्ञानी, ग्रंथ लेकर, तर्क करते, और बवाल।
चल रही है उल्टी शिक्षा, कर रहे उल्टे सवाल।

पूछते हैं लोग, प्रभु को याद हम कैसे करें?
पूछते हैं लोग, प्रभु का ध्यान हम कैसे धरें?

जो भी उत्तर आएगा तो और उलझते जाओगे।
प्रश्न ही उल्टे हैं, सीधा कैसे उत्तर पाओगे!

प्रश्न होना चाहिए, दुनिया की याद आती है क्यूँ?
प्रश्न होना चाहिए, तृष्णा न बुझ पाती है क्यूँ?

मोह-माया तज न पाए, चले उसको खोजने।
आरती हाथों में लेकर, लगे घर की सोचने।

मन को स्थिर कर न पाए, सबको धोखा दे रहे।
ध्यान धंधे में लगा है, नाम उसका ले रहे।

स्वार्थवश, संकट में केवल, नाम उसका टेरते।
उम्र बीती, मन न बदला, रोज़ माला फेरते।

बँध रहे हो दिन-ब-दिन, माया में, धन की डोर में।
भूलना चाहते हो ख़ुद को, घंटियों के शोर में?

उठो, अपनी आँखें खोलो, देखो तो सृष्टि की ओर।
कर रही स्वागत तुम्हारा, इक नई भीगी-सी भोर।

सुनो तो, पंछी भला आवाज़ किसको दे रहे?
देखो तो, ये पेड़-पौधे नाम किसका ले रहे?

क्या पवन यूँ बे-सबब ही बह रही है, बोलिए?
नदी कल-कल स्वर में यह क्या कह रही है, बोलिए?

बादलों के छोटे-छोटे बच्चे क्यूँ इतरा रहे?
पर्वतों की गोद में झरने भला क्या गा रहे?

सोचो तो, ये महके-महके फूल क्यूँ मुस्का रहे?
और ये भँवरे भला क्यूँ, कलियों पे मँडरा रहे?

किसके संग खेली है होली, तितलियों से पूछो तो।
तड़पी क्यूँ अँगड़ाई लेकर, बिजलियों से पूछो तो।

क्यूँ मलय से सरसराती शीत-लहरें आ रहीं?
क्यूँ भला बारिश की बूँदें, छन-छनन-छन गा रहीं?

किसकी भक्ति में है डूबा, हर अणु से पूछ लो।
रंग ये किसने बिखेरे, इंद्रधनु से पूछ लो।

क्यूँ ये कोहरा छा रहा, पागल है किसके नेह में?
आग ये किसने लगा दी, जंगलों की देह में?

हम सभी ढोंगी, दिखावट का ये वंदन व्यर्थ है।
भाव बिन, सब धूप-बत्ती, दीप-चंदन व्यर्थ हैं।

चल रही पूजा सतत चहुँ ओर, गहरे अर्थ हैं।
देखकर महसूस करने में भी हम असमर्थ हैं।

वृक्ष सारे, बेल की पत्ती से कुछ कम तो नहीं?
ख़ुशबू फूलों की, अगरबत्ती से कुछ कम तो नहीं?

प्रसाद है ये प्रकृति का, झूमते फल देखिए।
जल चढ़ाने आ रहे हैं, काले बादल देखिए।

चमचमाती आरती अंबर की, चंदा का दिया।
गड़गड़ाकर बादलों ने, नाद शंखों का किया।

और मैं क्या-क्या कहूँ, तुम अब इन्हीं से पूछ लो।
किसकी पूजा कर रहे ये सब, इन्हीं से पूछ लो।

निश्चित ही उत्तर मिलेगा, पूछकर देखो तो तुम।
सब तरफ़ वो ही दिखेगा, इक नज़र फेंको तो तुम।

तुमको सृष्टि के हर इक कण में वो आएगा नज़र।
देखते हो हर तरफ़, फिर भी हो उससे बेख़बर।

अपने हाथों से ही मंदिर-मस्ज़िदें बनवा रहे।
ढूँढते उसमें ख़ुदा को ख़ुद ही धोखा खा रहे।

ईश मंदिर में नहीं है, होश में आओ ज़रा।
प्रार्थना हो जाएगी, इक गीत तो गाओ ज़रा।

सारे कण-कण पर लिखा, बस एक उसका नाम है।
बस यही कान्हा है मीरा का, सिया का राम है।

उसके 'इस' होने का तुमको, भान जब हो जाएगा।
कुछ नहीं कह पाओगे तुम, मन वहीं खो जाएगा।

इस ज़ुबां से उसका विश्लेषण नहीं कर पाओगे।
दिल कहेगा कह दूँ पर, वर्णन नहीं कर पाओगे।

सोचो, संभव है कोई चम्मच से सागर नाप ले?
सोचो, संभव है कोई मीटर से नभ को माप ले?

सब सीमित है, वो अनंता, महिमा क्या गाओगे तुम?
खोलोगे मुँह बोलने को, गूँगे हो जाओगे तुम।

जब तलक तुम, 'तुम' रहोगे, वह नज़र आता नहीं।
उसमें जो खो जाए, वो ख़ुद का पता, पाता नहीं।

शांति का अनुभव करोगे, हृदय भर-भर आएगा।
नन्हा-सा अमृत का झरना, मन में फिर बह जाएगा।

यूँ लगेगा, बज रहे चहुँ ओर, स्वर संगीत के।
कुछ न भाएगा सिवा फिर, उस पिया की प्रीत के।

उस घड़ी हर ग्रंथ, हर शिक्षा, धरी रह जाएगी।
सिर झुका रह जाएगा, आँखें भरी रह जाएँगी।

***

इक मुखौटा तुम लगाते हो...

इक मुखौटा तुम लगाते हो
इक मुखौटा हम लगाते हैं
दो मुखौटे एक दूजे से,
राम जाने क्या छुपाते हैं

यूँ तो कहने के लिए हँसकर गले मिलते हैं हम
दिल-ही-दिल में एक दूजे से मगर जलते हैं हम
आँखों पर चश्मे चढ़े,
हाथ दस्ताने में हैं
चन्द बूँदें ज़िन्दगी,
टूटे पैमाने में हैं

फिर भी क़समें खाते हैं लाखों,
अगले ही पल भूल जाते हैं!
दो मुखौटे एक दूजे से,
राम जाने क्या छुपाते हैं?

***

साँझ ढले ही ध्यान हमारा...

साँझ ढले ही, ध्यान हमारा,
हर आहट पर रहता है।
रस्ते पर आँखें रहती हैं,
दिल चौखट पर रहता है।

कोई 'बावरी' बोले मुझको,
और कोई 'संतन' बोले।
दुनियावाले पगलाए हैं,
'बिरहन' को 'जोगन' बोले।
मेरा साजन, यमुना तट के,
वंशीवट पे रहता है।

मत पूछो दिन कैसे बीता,
कैसे रात गुज़ारी थी
पलकों की पंखुड़ियों पर, वो
शबनम कितनी भारी थी
कतरा-कतरा दिल तकिए पर,
ग़म सिलवट पे रहता है।

***

मुस्कुराने को न बोलो...

मुस्कुराने को न बोलो, जान के लाले पड़े हैं।

साथ लाइट-कैमरों के,
आ गए हैं दुःख जताने।
बैठकर फ़ुटपाथ पर, फिर
लग गए लोरी सुनाने।
क्या बताएँ सुनते-सुनते कान में छाले पड़े हैं।

सात दशकों से ग़रीबी
को हटाने में लगे हैं।
वो तो हट ना पाई, अब
फिर से पटाने में लगे हैं।
ख़ुद टमाटर हो गए, हम धूप से काले पड़े हैं।

कसमसाती मुट्ठियाँ हैं,
किन्तु हैं जेबों के अंदर।
हैं भिंचे जबड़े परन्तु,
क्षीण शक्ति का समंदर।
कंठ में हैं शब्द सहमे, होंठ पर ताले पड़े हैं।

भीड़ बोलो, भेड़ कह लो,
दोनों हैं पर्यायवाची।
चल पड़े, हाँका जिधर को
कब स्वयं की चाह बाँची
हर गड़रिए को पता है, सोच पर जाले पड़े हैं।

***

ख़ुद से बातें कर लेता हूँ...

मध्यरात्रि का गहन अँधेरा,
दूर कहीं अनजान सवेरा।
सहमी, ठिठकी ख़ामोशी को,
निज अंतस में भर लेता हूँ,
ख़ुद से बातें कर लेता हूँ...

सकल विश्व सोता रहता है,
अंतर्मन रोता रहता है।
अश्रुधार के भँवर ज्वार में,
स्वयं डूबकर तर लेता हूँ,
ख़ुद से बातें कर लेता हूँ...

अँधियारे में आँख गड़ाए,
पूरब से इक आस लगाए।
गिरते-पड़ते, उठते-चलते,
सारी राह गुज़र लेता हूँ,
ख़ुद से बातें कर लेता हूँ...

क्यों चाहूँ विश्राम के दो क्षण?
नहीं हुआ है अभी पूर्ण रण।
जिसे चाह है घर की, घर ले,
मैं तो सदा डगर लेता हूँ,
ख़ुद से बातें कर लेता हूँ...

नव-स्वप्नों के बीज बिखेरूँ,
काल-भाल पर स्वप्न उकेरूँ।
सारी चिंता छोड़-छाड़ कर,
वर्तमान को धर लेता हूँ,
ख़ुद से बातें कर लेता हूँ...

***

अनगाए गीत मेरे...

अनगाए गीत मेरे, पीर के बसेरे।
अनगढ़ से शब्द मेरे, भाव के चितेरे।

झील के किनारे पर, चाँद नाचता होगा।
नीलकमल में भँवरा, प्रीत बाँचता होगा।
मन उड़ते बादल में, चित्र-सा उकेरे।
अनसुलझे प्रश्न मेरे, रात के लुटेरे।

खिड़कियों के कमरे में, नीम झाँक जाता है।
अनबुझी प्रतीक्षा को, दीप मुँह चिढ़ाता है।
मन सूनी चौखट पे, नैन क्यूँ बिखेरे!
अनहद से अश्रु मेरे, मौन के मछेरे।

पदचिन्हों की मुर्दा लाश, उठ गई तो क्या?
पेड़ थम गए तो क्या, छाँव लुट गई तो क्या?
मन चलती राहों की, एड़ियाँ निबेरे।
अनथके क़दम मेरे, मंज़िलों के डेरे।

***

क्या पाया! मरुथल-सा जीवन!

क्या पाया! मरुथल-सा जीवन!
नागफणी से मीत!
पथराई आँखों में डूबे,
कालजयी से गीत!

कितना पानी बहा नदी में,
अब तक पड़ी, दरारें कितनी!
तट के सिर पर, लटक रही हैं,
लहरों की तलवारें कितनी!
क्या फाँसा, नादान मछेरे!
इक हारी-सी जीत?

सूखे कई समंदर खारे,
टूटे कई अबोले मोती।
कथरी की पैबंदी साँसें,
कब तक बूढ़ी आस पिरोती!
क्या चाहा, जो कभी किसी को
मिली नहीं, वो प्रीत...

***

याद आए बचपन के गाँव रे...

धरती ने धारी चुनरिया जो धानी,
बरखा में बदरा से बरसा जो पानी,
बिरहा की मारी, ये यादों की राधा,
आई चली नंगे पाँव रे।
याद आए बचपन के गाँव रे।

बौराई अमराई, गदराई अमिया,
कोयल की कूकें, चहकती चिरैया,
पागल पपीहे की प्यासी दो अँखियाँ,
पाए नहीं कोई ठाँव रे।
याद आए बचपन के गाँव रे।

पनघट पे अल्हड़-सी कलियों का मेला,
मदमाते, मँडराते, भँवरों का रेला,
जाड़े की ठिठुरन में, दहकी अंगीठी,
गर्मी में पीपल की छाँव रे।
याद आए बचपन के गाँव रे।

बरगद की दाढ़ी को छूकर लताएँ,
कहती थी, दादाजी गोद में उठाएँ
बारिश में आँगन में छप-छप नहाना,
तैराना काग़ज़ की नाव रे।
याद आए बचपन के गाँव रे।

***

मौन की भाषा...

गीत जो लिक्खे, निरर्थक शब्द बनकर रह गए।
भाव मन के, शब्द के पिंजरे में फँसकर रह गए।

तोड़ने को बाँध मन का, भाव लहरें हैं विकल।
हो गई अवरुद्ध वाणी, नेत्र हो उट्ठे सजल।

मौन की भाषा की कुछ शब्दों में अभिव्यक्ति कहाँ!
भावना को व्यक्त कर दे, शब्द में शक्ति कहाँ?

कह दिया मैंने बहुत-कुछ, फिर भी कुछ न कह सका।
मन में जो लावा था वो, पिघला मगर न बह सका।

और हम इतने विवश थे, सिर्फ़ हँसकर रह गए।
भाव मन के, शब्द के पिंजरे में फँसकर रह गए।

वक़्त मिल जाए कभी तो, ख़ुद से ही तुम पूछना।
कह सके औरों से क्या, सचमुच हृदय की वेदना?

चाह थी कहने की लेकिन, शब्द आड़े आ गए।
तुम नहीं समझा सके, या लोग धोखा खा गए।

शब्द और माध्यम? असंभव! शब्द क्या है, कौन है?
भावना कहने को केवल एक भाषा 'मौन' है।

मौन की भाषा, जिसे सुनता हृदय, कहते नयन।
कर रहे बेकार हम सब, व्यर्थ शब्दों का चयन।

शब्दों के ये नाग तो, भावों को डँसकर रह गए।
भाव मन के, शब्द के पिंजरे में फँसकर रह गए।

मौन भी भाषा ही है, पर किसको यह विश्वास है?
सोचते होंगे सभी, यह व्यर्थ की बकवास है।

तुम समझ न पाओगे, इस भावना की गूढ़ता।
क्योंकि तुमने ओढ़ रक्खी, शब्दवादी मूढ़ता।

ना समझ पाए, ना सुन पाए, इसी में राज़ है।
भाव ख़ुद भाषा है, वे कब शब्द के मोहताज हैं?

भावना जिनमें ढले, वे शब्द न चुन पाओगे।
तुम कभी धरती-गगन की बात न सुन पाओगे।

मौन की भाषा में क्या कहता है चातक मेघ से?
झूमते पेड़ों ने क्या बोला पवन के वेग से?

पंछियों ने भोर की पहली किरण से क्या कहा?
गुनगुनाते भ्रमर ने, खिलते सुमन से क्या कहा?

प्यासे रेगिस्तान से क्या कह दिया है रेत ने?
कृषक से क्या कह दिया है लहलहाते खेत ने?

चाँद ने कल रात अपनी चाँदनी से क्या कहा?
या पतंगे ने शमा की रोशनी से क्या कहा?

झील क्या कहती है सकुचाए कमल के फूल से?
क्या कहा बारिश की बूँदों ने, धरा की धूल से?

भीगी-भीगी ओस ने है पुष्प-दल से क्या कहा?
विरह में व्याकुल नदी ने, सिंधु-जल से क्या कहा?

अनगिनत सदियों से पर्वत नभ से क्या बतिया रहे?
कौन-सा महागीत ये निर्झर, निरंतर गा रहे?

खेत भी, खलिहान भी, सागर भी और पाषाण भी,
बस्तियों से कह रहे कुछ, खंडहर सुनसान भी।

सारी सृष्टि कह रही, पर लग रहा, निस्तब्ध है।
मौन की भाषा है ये, और भावना के शब्द हैं।

भावना जिनमें ढले, वे शब्द न चुन पाओगे।
तुम कभी धरती-गगन की बात न सुन पाओगे।

और कभी सुन भी लिया, तो कह नहीं पाओगे तुम।
शब्दों की बैसाखी होगी, फिर भी लंगड़ाओगे तुम।

कहना तो चाहोगे सबसे, किंतु न कह पाओगे।
शब्द पड़ जाएँगे छोटे, ढूँढते रह जाओगे।

क्योंकि जो दिल से न निकलें, शब्द वो निस्सार हैं।
ये किसी वीणा के टूटे तार हैं, बेकार हैं।

साज़ ना झंकृत हुआ, बस तार कसकर रह गए।
भाव मन के शब्द के पिंजरे में फँसकर रह गए।

***

आत्मशक्ति का खेल है सारा...

आत्मशक्ति का खेल है सारा।
विजय उसे ही मिली यहाँ पर,
मन से कभी नहीं जो हारा।
आत्मशक्ति का खेल है सारा...
आत्मशक्ति का खेल है सारा।

उम्र तो केवल इक संख्या है,
उम्र से कब कोई वृद्ध हुआ है?
जिसका मन ऊर्जा से भरा हो,
वह बुज़ुर्ग भी, सदा युवा है।
उसका जीवन नित्य नया है,
जिसने हर क्षण को है सँवारा।
आत्मशक्ति का खेल है सारा...
आत्मशक्ति का खेल है सारा।

रोग, शोक, दुःख-दर्द, निराशा,
सिर्फ़ मानसिक कमज़ोरी है।
देख ध्यान से, चंचल मन की,
तेरे हाथ में ही डोरी है।
सोच सकारात्मक रख प्यारे,
वही बनेगी तेरा सहारा।
आत्मशक्ति का खेल है सारा...
आत्मशक्ति का खेल है सारा।

जिसे अँधेरा समझ रहा तू,
वह अभाव है मात्र किरण का।
इक आशा का दीप जला ले,
मिट जाएगा तम जीवन का।
जिस उद्गम से तृष्णा जन्मी,
वहीं से निकलेगी जलधारा।
आत्मशक्ति का खेल है सारा...
आत्मशक्ति का खेल है सारा।

***

एक तरफ़ होना पड़ेगा...

सच्चे मन से विश्व का कल्याण यदि तुम चाहते हो,
तो ये निश्चित जान लो, अब एक तरफ़ होना पड़ेगा।

आसुरी शक्ति यहाँ अब तामसिक धुन गा रही है।
सिर से भावी पीढ़ियों के, छाँव छीनी जा रही है।
ढा रही ज़ुल्मो-सितम चहुँ ओर जयचंदों की टोली,
बाड़ ख़ुद बेशर्म होकर खेत अपना खा रही है।

अब अखंडित राष्ट्र का निर्माण, यदि तुम चाहते हो,
तो ये निश्चित जान लो, अब एक तरफ़ होना पड़ेगा।

कौन है विपरीत धारा के, यहाँ जो बह सकेगा?
कौन है जो विश्व के कल्याण हित दुःख सह सकेगा?
कंठ में जब सत्य के स्वर को दबाया जा रहा हो।
देख यह कोई भला निष्पक्ष कैसे रह सकेगा?

हो न मानवता कभी निष्प्राण, यदि तुम चाहते हो,
तो ये निश्चित जान लो, अब एक तरफ़ होना पड़ेगा।

कल समय पूछेगा सबसे, सत्य जब घायल पड़ा था,
कौन मज़बूती से उसके पक्ष में डटकर खड़ा था।
कौन छल, बल या प्रलोभन से मिला शत्रु से जाकर,
कौन दुश्मन की तरफ़ से युद्ध में छुपकर लड़ा था।

व्यर्थ वीरों का न हो बलिदान, यदि तुम चाहते हो,
तो ये निश्चित जान लो, अब एक तरफ़ होना पड़ेगा।

***

धरती मैया माफ़ कर देना हमें...

धरती मैया, माफ़ कर देना हमें,
हम अभागे ही तेरे लायक़ नहीं है।

जाने कितने पेड़ काटे,
जाने कितने वन उजाड़े।
हमने अपने हाथों भावी
पीढ़ी के बचपन उजाड़े।

शुद्धता के नाम पर हम,
रख सके ना कुछ बचाकर।
क्या दिया बच्चों को हमने
इक प्रदूषित गैस चैंबर!

इतने अत्याचार तुझ पर,
उम्र भर हमने किए हैं।
अपनी ख़ुदग़र्ज़ी के चलते,
ज़ख़्म ही हरदम दिए हैं।

सच कहूँ तो हम ही हैं, मुजरिम तेरे,
हमको कुछ भी बोलने का हक़ नहीं है।
धरती मैया, माफ़ कर देना हमें
हम अभागे ही तेरे लायक़ नहीं हैं।

***

राम नाम सत्य है...

ये नहीं कि उम्र भर,
जिंदगी में 'तम' रहा।
किंतु पट्टी आँख पर,
और दिल में भ्रम रहा।

सोचते थे, विश्व पर,
अपना आधिपत्य है।
अंत में पता चला, कि
राम नाम सत्य है।

सबको वो नचा रहा,
डोर जिसके हाथ है।
काल का भी काल वो,
वो ही विश्वनाथ है।

विश्व रंगमंच पर, ये
पुतलियों का नृत्य है।
अंत में पता चला, कि
राम नाम सत्य है।

***

तुझे सच्ची दुःख तो होता होगा न?

हम कैसे बंदे हैं तेरे,
हर पल, दिन-रात झगड़ते हैं।
तुझे कैसा लगता होगा तब,
तेरे नाम पे जब हम लड़ते हैं।
तुझे सच्ची दुःख तो होता होगा न?

हम जी सकते थे,आपस में,
ता-उम्र, सुकूं के साथ यहाँ।
क्योंकि हम इससे वाक़िफ़ थे,
नहीं आएगा कुछ हाथ यहाँ।

फिर भी हमने अपनी ज़िद में,
धरती को नरक बना डाला।
छोटा-सा जीवन था, वह भी,
नफ़रत की भेंट चढ़ा डाला।

हम फूँक रहे अपना ही घर,
हम लोगों की नासमझी पर
तुझे सच्ची दुःख तो होता होगा न?

हमने तुझको भी बाँट दिया,
मंदिर, मस्ज़िद, गुरुद्वारों में।
उन बातों को हम ना समझे,
जो तूने कही इशारों में।

जो लोहा, हल बन सकता था,
हम खंजर उसे बना बैठे।
जो साँसें थीं अनमोल बड़ी,
हम यूँ ही उन्हें, गँवा बैठे।

हम डूबे रहे जहालत में,
हमें देख के ऐसी हालत में।
तुझे सच्ची दुःख तो होता होगा न?

केसरिया फूलों के संग ही,
थी हरी पत्तियाँ शाखों पे।
लेकिन हम वो न देख सके,
पट्टी थी बँधी इन आँखों पे।

ना मर्म, धर्म का जान सके,
हम उलझे रहे किताबों में।
ऊँचे शिखरों में, कलशों में,
मीनारों और, मेहराबों मे।

हम रहे पीटते पानी पर,
हम लोगों की नादानी पर।
तुझे सच्ची दुःख तो होता होगा न?

***

अटल जी को याद करते हुए...

सत्य-मार्ग दिखलानेवाला अमर रहे,
राज-धर्म सिखलानेवाला अमर रहे।
अपने शब्दों की प्रचण्डतम ज्वाला से,
पत्थर को पिघलानेवाला अमर रहे।

जिसका तन-मन, जीवन, परिचय, हिन्दू था,
शांति और सद्भाव का चरम-बिंदु था।
दृढ़निश्चय था जिसका अटल हिमालय सा,
जो उदारता में अगाध महासिंधु था।

वो...
सबको गले लगानेवाला अमर रहे,
गीत नया नित गानेवाला अमर रहे।
अविरल काल कपाल पे निज अंतर्मन से,
लिखकर स्वयं मिटानेवाला अमर रहे।

जिसकी वाणी में था ओज दिवाकर सा,
संयम का जो था प्रतीक, महासागर सा।
राजा था, हर दिल पर जिसकी सत्ता थी,
जीता था जो फिर भी मस्त कलंदर सा।

वो...
स्वाभिमान समझानेवाला अमर रहे,
रघुकुल रीत निभानेवाला अमर रहे।
सिद्धांतों से समझौता ना करके, वो,
सिंहासन ठुकरानेवाला अमर रहे।

सभी जानते थे यह वचन निभाता है,
संघर्षों से इसे जूझना आता है।
कहा था जिसके विषय में ख़ुद नेहरू जी ने,
ये कल के भारत का भाग्य-विधाता है।

वो...
करगिल विजय दिलानेवाला अमर रहे,
अरि का शीश झुकानेवाला अमर रहे।
परमाणु विस्फोट से सारी दुनिया को,
हिन्द की गूँज सुनानेवाला अमर रहे।

***

कुछ दोहे...

अब तो अपने वोट की, क़ीमत को पहचान!
जाम, दाम, पिस्तौल है, तेरा ही अपमान।

दो कौड़ी में जो बिके, पौवा पी इतराए!
वो चुनाव के बाद में, पाँच साल पछताए।

जान-बूझकर क्यूँ करे, ग़लती ख़ुद हर बार?
भीख माँग मत, छीन ले तू अपना अधिकार।

लोकतन्त्र के नाम पर, करते जो खिलवाड़!
उनके हर षड्यंत्र को, मत-पेटी में गाड़।

लेकर सीख अतीत से, कर भविष्य निर्माण!
तू ही कर सकता है बस, अब तेरा कल्याण!

***

हर्ज क्या है...

क्या पता शायद कोई,
उम्मीद आगे झिलमिलाए!
एक कोशिश और कर के
देखने में हर्ज क्या है?

जानता हूँ, मानता हूँ,
तू रहा नाकाम अब तक।
किन्तु थककर बैठने का,
यह कोई कारण नहीं है।

साँस जब तक चल रही है,
आस को मत छोड़ देना।
टूट जाए साँस के पहले,
वो सच्चा प्रण नहीं है।

क्या पता शायद कोई
सोई लहर ही जाग जाए!
एक पत्थर झील में फिर,
फेंकने में हर्ज क्या है?

***

ओ नादान जमूरे...

तू नाचे और हो सत्कार मदारी का!
ओ नादान जमूरे!!
तू, कब तक पालेगा परिवार मदारी का?

उसने हाथ में पकड़ रखी है,
तेरे गले की डोरी!
उसके इशारों पर तू नाचे,
यही तेरी कमज़ोरी!

दिखता है कि बँधा है तू, पर
तुझसे वही बँधा है!
तू भागे तो वह दौड़ेगा,
तू उन्मुक्त सदा है!

तू माँगें, भरता भण्डार मदारी का!
ओ नादान जमूरे!!
तू, कब तक पालेगा परिवार मदारी का?

सर्दी-गर्मी कुछ ना देखे,
शोषण तेरा करे वो!
रूखी-सूखी देकर तुझको,
अपना पेट भरे वो!

तेरी नुमाइश, तेरा तमाशा,
वो डुगडुगी बजाए!

पर तू उसकी चाल न समझे,
और उलझता जाए!

तू डूबे, हो बेड़ा पार मदारी का!
ओ नादान जमूरे!!
तू, कब तक पालेगा परिवार मदारी का?

***

राम नाम के जैसा पावन...

राम नाम के जैसा पावन,
नहीं है दूजा नाम।
जय राम राम, सिया राम राम,
सिया राम राम, जय राम।

सरयू के तट बोले जग में,
नहीं अवध-सा धाम।
जय राम राम, सिया राम राम,
सिया राम राम, जय राम।

प्रभु तुम्हीं साकार रूप में,
दशरथ के घर आए।
निराकार बनकर सृष्टि के,
कण-कण में हो समाए।

जहाँ नहीं तुम, जग में ऐसा,
कोई स्थान नहीं है।
राम नाम सुमिरन से बढ़कर,
कोई ध्यान नहीं है।

तन-मन-जीवन अर्पण करके,
जपूँ नित्य अविराम।
जय राम राम, सिया राम राम,
सिया राम राम, जय राम।

दो अक्षर के नाम की महिमा,
तीनों लोक में छाई।
जपकर उल्टा नाम वाल्मीकि
ने मुक्ति पाई।

जड़-चेतन, सुर-असुर सभी को,
है जिस नाम ने तारा।
शबरी, केवट, और अहिल्या,
सबने जिसे पुकारा।

साँसों की यह माला निस दिन,
सुमिरे आठों याम।
जय राम राम, सिया राम राम,
सिया राम राम, जय राम।

***

मैं अच्छा इंसान नहीं हूँ...

मैं अच्छा इंसान नहीं हूँ, सच मानो।

जितना प्यार मिला है जग से,
उतना जग को दिया नहीं है।
इस दुनिया की ख़ातिर मैंने,
सच में कुछ भी किया नहीं है।

जितने ज़्यादा पाप किए हैं,
उतना पुण्य कमा ना पाया।
जितने काग़ज़ लिख-लिख फाड़े,
उतने पेड़ लगा ना पाया।

शिक्षा हूँ बस, ज्ञान नहीं हूँ, सच मानो।
मैं अच्छा इंसान नहीं हूँ, सच मानो।

था परमार्थ दिखावा केवल,
भीतर, स्वार्थ अगाध छुपा था।
पंछी को जब चुग्गा डाला,
तब अंतस में व्याध छुपा था।

होगी कोई चाह अधूरी,
जिसने फिर जन्माया मुझको।
होगा कोई क़र्ज़ बकाया,
जो दुनिया में लाया मुझको।

शाप हूँ मैं, वरदान नहीं हूँ, सच मानो।
मैं अच्छा इंसान नहीं हूँ, सच मानो।

***

तुम मुझको विस्मृत कर देना...

स्मृति वेदना की जननी,
स्मृति विगत का दर्पण है।
स्मृति कभी है कंटक-वन,
तो कभी महकता उपवन है।
इसलिए प्रार्थना करता हूँ,
यादों की गठरी धर देना।
तुम मुझको विस्मृत कर देना।

अंतस के आकुल स्वर पंछी,
चिर मौन को गुंजन दे देंगे।
वे शब्द-रूप में ढलने पर,
अर्थों को जीवन दे देंगे।
इसलिए प्रार्थना करता हूँ,
मत भावों को अक्षर देना।
तुम मुझको विस्मृत कर देना।

जीवन है केवल वर्तमान,
बीते से मत बँध जाना तुम।
भावी है केवल मृगतृष्णा,
उसमें पड़, मत भरमाना तुम।
जी भर के जीना हर पल को,
'अस्तित्व' हँसी से भर देना।
तुम मुझको विस्मृत कर देना।

***